



**समकालीन जीवन-मूल्यों के सम्बन्ध में  
'संशय की एक रात'  
का समीक्षात्मक अध्ययन**

**अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की  
एम०फिल० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत  
लघु शोध-प्रबन्ध**

निर्देशक

**प्रो० शैलेश जैदी**

[पी-एच०डी०, डी०लिट्०]

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

शोधार्थी

**सुरेश चन्द्र**

[कनिष्ठ शोध अध्येता]

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

नयी दिल्ली

**हिन्दी विभाग**

**अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़**

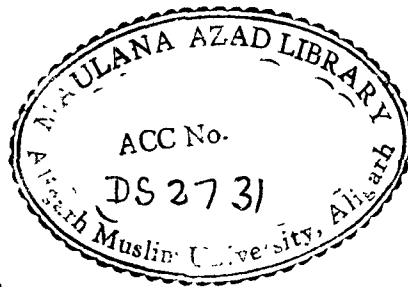
**उत्तर प्रदेश (भारत)**

**1995**

**Red In Computer**



**DS2731**



**CHECKED-2002**



समर्पण

स्वर्गीय पूज्य पिता

श्री श्याम लाल

और

ममतामयी पूज्या माता

सोमवती देवी

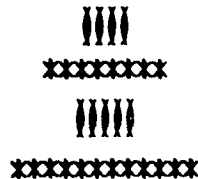
के

कर कमलों में

समर्पित

\*  
\*\*  
\*\*\*  
\*\*\*\*  
\*\*\*\*\*  
\*\*\*\*\*  
\*\*\*\*\*

| प्राक्कथन   | पृष्ठ संख्या<br>क - ग |
|---|-----------------------|
| अध्याय - एक : शोध की आवश्यकता और महत्व  | 1 - 12                |
| अध्याय-दो : जीवन-मूल्य : स्वरूप विवेचन<br>मूल्य : पारिभाषिक परिधियों; जीवन-मूल्य एवं उनके निर्माणक तत्व; जीवन-मूल्यों का वर्गीकरण; जीवन-मूल्य और साहित्य : अन्तःसंबंध।  | 13- 36                |
| अध्याय - तीन : संशय की एक रात का समकालीन परिवेश<br>राजनीतिक परिवेश; आर्थिक परिवेश; सामाजिक परिवेश।  | 37- 54                |
| अध्याय - चार : समकालीन जीवन-मूल्य और संशय की एक रात<br>समकालीन : अर्थ एवं परिभाषा; समकालीन जीवन-मूल्य; संशय की एक रात का कथानक; संशय की एक रात में अभिव्यक्त जीवन-मूल्य।  | 55- 84                |
| अध्याय - पाँच : समकालीन काव्य में सन्दर्भित जीवन-मूल्य और संशय की एक रात<br>अन्धायुग; अन्धायुग और संशय की एक रात, द्रोपदी; द्रोपदी और संशय की एक रात; पाषाणी; पाषाणी और संशय की एक रात, एक कंठ विषपायी; एक कंठ विषपायी और संशय की एक रात; उर्वशी; उर्वशी और संशय की एक रात। | 85-124                |
| उपसंहार   | 125-127               |
| परिशिष्ट  | 128-131               |
| मूल ग्रन्थ : (क) आधार ग्रन्थ, (ख) अन्य ग्रन्थ।<br>समीक्षात्मक ग्रन्थ, पत्रिकाएँ, शब्दकोश।   |                       |



## प्रारम्भिक

युगानुरूप जीवन-मूल्यों का निर्धारण और उनकी सुरक्षा करना साहित्य का महत् प्रदेय होता है । साहित्य से जुड़ी सर्वहित की धारणा भी इसी का संकेत देती है । हिन्दी का राम-काव्य इस दिशा में प्रारम्भ से ही अग्रणी रहा है । हिन्दी साहित्येतिहास के प्रत्येक काल-खण्ड में विश्व-प्रसिद्ध राम-कथा के आधार पर प्रणयन हुआ है । राम-काव्य परम्परा के प्रत्येक काव्य में काल और परिस्थितियों के अनुरूप जीवनादर्शों की प्रस्तुति हुई है । हिन्दी राम-काव्य परम्परा के पीछे युग पुरुष राम की चारित्रिक उज्ज्वलता रही है । अपनी चारित्रिक महानता के कारण राम भारतीय समाज के जानमानस में रच-बस गये हैं। इसलिए राम और उनसे सम्बद्ध अन्य पात्रों के माध्यम से जीवन-मूल्यों का प्रतिपादन रचनाधर्मियों के लिए न केवल आसान होता है । बल्कि प्रभावोद्पादक भी होता है । हिन्दी नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर श्री नरेश मेहता ने भी **संशय की एक रात** में राम-कथा के माध्यम से जीवन-मूल्यों की अभिव्यंजना की है । नरेश मेहता का यह लघु खण्ड काव्य समाज को श्रेष्ठ जीवन-पद्धति प्रदान करता है । अतः **संशय की एक रात** में सन्दर्भित जीवन-मूल्य वर्तमान जीवन को समझने-परखने और भवी जीवन का स्वरूप निर्धारित करने में योग दे सकते हैं । इस दृष्टि से समकालीन (रचना के समकालीन) जीवन-मूल्यों के आकलन के साथ **संशय की एक रात** में सन्दर्भित जीवन-मूल्यों का विवेचन उपयोगी और मौलिक प्रयास है ।

यहाँ यह उल्लेख्य है कि प्रस्तुत शोध -प्रबन्ध का मूल विषय **समकालीन जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में संशय की एक रात का समीक्षात्मक अध्ययन** था । प्रवेश-प्रक्रिया के दौरान अधिष्ठाता कार्यालय में टंकण की भूल से उक्त विषय **समकालीन जीवन-मूल्यों के सम्बन्ध में संशय की एक रात का समीक्षात्मक अध्ययन** हो गया , जिसे कार्यालयी असुविधाओं के कारण बदला नहीं जा सका है ।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है । अध्याय-एक में प्रस्तुत शोध की आवश्यकता और महत्त्व को रेखांकित करते हुए विषय से सम्बद्ध पूर्व शोध और समीक्षात्मक लेखन का संक्षिप्त परिचय दिया गया है ।

अध्याय -दो जीवन-मूल्यों के सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बद्ध है । इस अध्याय में जीवन-मूल्य का स्वरूप , मूल्य-वर्गीकरण, मूल्यों के प्रभावक घटक आदि विषयों पर विचार किया गया है ।

अध्याय-तीन में संशय की एक रात के समकालीन परिवेश का आकलन किया गया है । समकालीन परिवेश की सीमा भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति (सन् 1947 ई0) से भारत-चीन आक्रमण (सन् 1962 ई0) तक है ।

अध्याय-चार में समकालीन जीवन-मूल्यों का उल्लेख करते हुए संशय की एक रात में सन्दर्भित जीवन-मूल्यों को स्पष्ट किया गया है ।

अध्याय-पाँच में समकालीन काव्य से संशय की एक रात की जीवन-मूल्यों के आधार पर तुलना करते हुए संशय की एक रात के वैशिष्ट्य को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है ।

प्रबन्ध के अन्त में समस्त विषय-सामग्री के निष्कर्ष रूप में उपसंहार प्रस्तुत किया गया है और शोध-कार्य में प्रयुक्त आधार-ग्रन्थ एवं सहायक ग्रंथों की सूची परिशिष्ट के अन्तर्गत संलग्न की गई है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध परमादरणीय गुरु हिन्दी-उर्दू के प्रसिद्ध कवि और समीक्षक प्रो० शैलेश जैदी के कुशल निर्देशन में लिखा गया है । प्रबन्ध की मौलिकता एवं नवीनता का आधार श्रद्धेय गुरुवर की अद्यतन साहित्यिक सोच एवं बहुमुखी प्रतिभा ही है , जिसे मैं लाभान्वित होता रहा हूँ । उनके गुरुत्व के प्रति आभार स्वरूप कुछ शब्द लिखकर गुरु-शिष्य की पवित्र परम्परा को औपचारिक बना देने की सामर्थ्य मैं नहीं जुटा सकता हूँ । कृतज्ञता शिष्य का आन्तरिक धर्म है । मेरा शिष्यत्व उसे पूर्णता प्रदान करे, यही मेरी कामना है ।

मैं भूतपूर्व विभागाध्यक्ष श्रद्धेय प्रो० के० पी० सिंह के प्रति आभारी हूँ, जिनसे मुझे साहित्य को समझने के लिए जनवादी दृष्टि मिली है ।

परमादरणीय प्रो० बी० एस्० नीहार और प्रो० के० एम० मिश्रा ने मुझे अपने स्नेह और सद्विचारों से प्रस्तुत शोध-कार्य को पूरा करने में जो प्रोत्साहन दिया, वह भी अविस्मरणीय है । मैं इनके प्रति श्रद्धावान् हूँ ।

मैं आदरणीय डॉ० भरत सिंह, डॉ० अरिफ नजीर, श्री अजय बिसारिया, डॉ० मेराज बहमद के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने विचार-विमर्श एवं सामग्री संवर्धन में मुझे सहयोग दिया ।

इस अवसर पर मैं अपने अग्रज आदरणीय श्री रूपकिशोर और अनुज श्री साहब सिंह को नहीं भुला सकता हूँ । इनका भ्रातृत्व ही मेरा सम्बल है ।

मेरी बेटी **सहित्यांजलि चन्द्र** और बेटा **सहित्येश चन्द्र** की किलकारियाँ मुझे प्रसन्न रखने हुए कुछ करने के लिए बराबर प्रेरित करती रहती हैं । इसलिए उनका भी हक बनता है कि मैं उन्हें यहाँ स्थान दूँ । उनके प्रति आभार व्यक्त न करके मैं उनका कृतज्ञ नहीं हो सकता हूँ ।

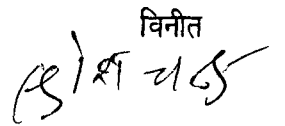
प्रस्तुत कार्य को पूर्णता प्रदान करने की अवधि में मेरी पत्नी **श्रीमती सुशीला चन्द्र** ने मुझे तमाम असुविधाओं से मुक्त रखा । उनके सहयोग के प्रति कुछ भी कहना अपूर्णता का वाचक होगा । इसलिए कुछ न कहना ही ठीक है ।

मैं **दीदी फ़तिमा परवेज** के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने सदैव नेक सुझाव देकर मुझे लाभान्वित किया ।

मैं अपने मित्र **श्री अब्दुल अली खान**, **श्री विद्युत कुमार** और **श्री शमशाद खान** के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने अपने सुझावों से मुझे लाभान्वित किया ।

मैं मौलाना आजाद पुस्तकालय में सेवारत **श्री राकिम अली** और **श्री वाजिद हुसैन** के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने दुर्लभ पुस्तकें उपलब्ध कराने में मेरी भरपूर सहायता की । मैं हिन्दी विभाग के कार्यालय में सेवारत समस्त महानुभावों के प्रति आभारी हूँ, जो मुझे हर सम्भव सहयोग देते रहते हैं ।

अन्त में, मैं **श्री प्रदीप शर्मा** का दिल से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के टंकण को शीघ्रतापूर्वक पूर्णता प्रदान की ।

विनीत  


(सुरेश चन्द्र)

23 जुलाई, 1995 ई०

## अध्याय – एक



## शोध की आवश्यकता और महत्व

इतिहास का निमोण करने वाली घटनाएँ काल के पटल पर अंकित होकर समाज के जीवन-मूल्यों को प्रभावित करती रहती है। भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति और भारत-चीन युद्ध दो ऐसी ही घटनाएँ हैं, जिनसे न केवल भारतीय इतिहास के पृष्ठों में वृद्धि हुई, बल्कि भारतीय समाज के जीवन-मूल्य भी गहराई से प्रभावित हुए। उक्त दोनों घटनाएँ डेढ़ दशक के अन्तराल से घटी। ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि इस अवधि में विश्व स्तर पर, पराधीन राष्ट्रों ने अपनी अस्मिता बनाने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष किया।<sup>1</sup> इस संघर्ष में उनको यथेष्ट सफलता भी मिली।<sup>2</sup> इसके पीछे भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति का बहुत बड़ा हाथ था। सच्चे अर्थ में भारत की स्वतंत्रता ने ही अन्य पराधीन राष्ट्रों के लिए मुक्ति का पथ प्रशस्त किया था। भारत की देखा-देखी उपनिवेशवाद से ग्रस्त विश्व के तमाम देश उपनिवेशवादियों के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। युद्ध और अपसी टकराव के फलस्वरूप स्थिति इतनी भयावह बन गयी थी कि लोगों ने तृतीय विश्व युद्ध के बारे में सोचना आरम्भ कर दिया था।<sup>3</sup> साम्यवादी और पूँजीवादी देशों के मध्य चल रहे शीत युद्ध के कारण भारत जैसे शांतिप्रिय देश बहुत परेशान हो रहे थे। इन परिस्थितियों में शांति की स्थापना और नागरिक स्वतंत्रता का प्रश्न बुद्धिजीवियों और रचनाधर्मियों के लिए अहम् बन गया था। छठे दशक के हिन्दी काव्य ने समकालीन परिवेश को पूर्णरूपेण आत्मसात् किया। 'संशय की एक रात' के अतिरिक्त इस दौर में युद्ध और शांति तथा नागरिक स्वतंत्रता की समस्या पर केन्द्रित अनेक प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन हुआ।

इन काव्यों में युद्ध हो या न हो? क्या युद्ध से शांति सम्भव है? क्या नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध अनिवार्य है? जैसे प्रासंगिक प्रश्नों पर लम्बी बहसे देखने का मिलती है। अंधायुग, कनुप्रिया, एक कंठ विषपापी आदि अनेक रचनाओं में शांति की स्थापना के लिए युद्ध का विरोध किया गया है। इन रचनाओं में युद्ध को मानवता-विरोधी मानते हुए उससे बचने पर बल दिया गया है। नरेश मेहता ऐसा नहीं मानते। उनकी दृष्टि में युद्ध बुराई पर अच्छाई, असत्य पर सत्य, परतंत्रता पर स्वतंत्रता औपनिवेशिकता पर जनवादिता की विजय का साधन है। यही कारण है कि उनकी संशय की एक रात में लम्बी विचारोत्तेजक बहस के पश्चात् जनहित में युद्ध को अनिवार्य माना गया है। वस्तुतः कहा जा सकता है कि संशय की एक रात में रचयिता ने युद्ध के

सृजनात्मक पक्ष को उभार कर उसे एक जनतांत्रिक जीवन-मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

भारतीय संविधान जिन लोक कल्याणकारी जीवन-रीतियों को लेकर अस्तित्व में आया उनसे संशय की एक रात के रचयिता ने पर्याप्त प्रेरणा ली है। मुख्य रूप से शासन की जनतांत्रिक पद्धति में बहुमत की श्रेष्ठता, नागरिक स्वतंत्रता, सामाजिक समानता आदि ऐसे संवैधानिक विषय हैं जिनकी संशय की एक रात में काव्यात्मक अभिव्यंजना हुई है। विशुद्ध राजनीतिक विषयों को साधारण जनता के लिए कान्ता सम्मत ढंग से सम्प्रेषणीय बनाने में नरेश मेहता को यथेष्ट सफलता मिली है।

इसके अतिरिक्त नरेश मेहता ने संशय की एक रात में जीवन-व्यवहारके विविध क्षेत्रों से सम्बद्ध अनुकरणीय जीवन-मूल्यों को स्थान दिया है। कवि ने इस लघु काव्य में जिन जीवन-मूल्यों को समेटा है, उनसे सुखद जीवन का पथ प्रशस्त होता है। इस दृष्टि से यह अनिवार्य हो जाता है कि संशय की एक रात में अभिव्यंजित जीवन-दृष्टि से समाज का परिचय हो। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध इसी दिशा में एक लघु प्रयास है।

समाज के लिए संशय की एक रात की उपादेयता इस बात से स्पष्ट हो जाती है कि इस रचना पर अनेक विद्वानों द्वारा विभिन्न दृष्टियों से विचार किया जा चुका है। शोधकाय में प्रवृत्त होने से पहले विवेच्य कृति से सम्बद्ध विभिन्न विद्वानों के दृष्टिकोणों को जान लेना अपेक्षित है। वस्तुतः हिन्दी-शोध और समीक्षात्मक लेखन के अन्तर्गत इस रचना पर अब तक जो कार्य हुआ है उसका समीक्षात्मक परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

(1) **नरेश मेहता का साहित्य :** एक अनुशीलन पुस्तक ग्रन्थायन अलीगढ़ से सन् 1990 ई० में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक की लेखिका डा० विद्या सिंह हैं। इस पुस्तक का फलक नरेश मेहता की विभिन्न विधाओं से सम्बद्ध रचनाओं के परिचय, अनुशीलन एवं समीक्षात्मक विवेचन तक फैला हुआ है। प्राक्कथन, अपनी बात, क्रमदर्शिका और नरेश मेहता के परिचय में विभक्त प्रारम्भ के 30 पृष्ठों को अलग कर दें तो शेष 160 पृष्ठों की इस पुस्तक में विविध विधाओं में फैले नरेश मेहता के विपुल साहित्य का सही मूल्यांकन असंभव है। कहने का तात्पर्य यह है कि पुस्तक में किया गया अध्ययन मात्र परिचयात्मक और सतही है।

लेखिका ने पुस्तक के दो अध्यायो -- 'कृतियों का संक्षिप्त परिचय' और 'काव्य-कृतियों का विवेचनात्मक अध्ययन' में संशय की एक रात पर चर्चा की है। संक्षिप्त परिचय में अन्य रचनाओं की शृंखला में इस रचना का सर्गानुसार कथ्य विश्लेषित किया गया है। खण्ड-काव्यों के विवेचनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत लेखिका ने अध्ययन की किसी नवीन दृष्टि का परिचय नहीं दिया है। रचना के सम्बन्ध में अपनी मान्यताएँ देने के स्थान पर लेखिका ने अन्य विद्वानों (डॉ० हुकुम चन्द राजपाल, डॉ० हरिचरण शर्मा और डॉ० सन्तोष कुमार तिवारी) के मतों का उल्लेख करना अधिक उपयुक्त समझा है।

(2) अभिनव प्रकाशन, दिल्ली से सन् 1976 ई० प्रकाशित डॉ० शशि सहगल की पुस्तक **नयी कविता में मूल्य-बोध** के अन्तर्गत नयी कविता के मूल्य-बोध को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। नयी कविता धारा की रचना होने के कारण संशय की एक रात भी विवेच्य विषय का हिस्सा बनी है। नयी कविता में उपलब्ध मूल्य-बोध को रेखांकित करने की शृंखला में इस रचना की जगह-जगह चर्चा हुई है।

संशय की एक रात के केन्द्र में युद्ध-दशोन रहा है। शशि सहगल ने इस युद्ध-दशोन का आज के व्यक्ति का युद्ध-दशोन बताते हुए उसे नयी कविता के दशोन का हिस्सा माना है। नयी कविता की अन्य रचनाओं में यह दशोन विभिन्न माध्यमों से अभिव्यजित हुआ है।

मानव-विशिष्टता और मानव-स्वाभिमान के सन्दर्भ में लेखिका का मानना है कि ये ऐसे जीवन-मूल्य हैं जिनका उदय आधुनिक युग में हुआ है। संशय की एक रात में नरेश मेहता ने उक्त दोनों मूल्यों को स्थान दिया है। लेखिका के अनुसार काव्य नायक राम के द्वारा युद्ध को बचाने और युद्ध को स्वीकार कर लेने के प्रसंग क्रमशः मानव-विशिष्टता और मानव-स्वाभिमान की ही अभिव्यजना करते हैं। यहाँ यह उल्लेख्य है कि राम के अन्तर्मेन में उपयुक्त दोनों जीवन-मूल्य आपस में टकराते हैं जिसके कारण संशय की स्थिति उत्पन्न हुई। अन्त में राम के द्वारा युद्ध को स्वीकार कर नरेश मेहता ने मानव-स्वाभिमान को ही प्रतिष्ठित करना चाहा है। लेखिका ने इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया है।

(3) डॉ० वेजनाथ सिंहल की शोधात्मक आलाचना की नयी कविता : मूल्य-मीमांसा पुस्तक मथन पब्लिकेशन्स, रोहतक से सन् 1985 ई० में प्रकाशित हुई। शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि इस पुस्तक में हिन्दी की नयी कविता पर जीवन-मूल्यों की दृष्टि से विचार किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में नौ अध्याय हैं - सृजन-भूमि, बीज और किञ्जलक, विवेक और आस्था, कवि का अनुभूत, बनते-बिगड़ते कवि, कविता की मौत, अन्तराल, संत्रास का जंगल और मसि के रंग। नयी कविता को समग्रता में समझने के लिए डॉ० सिंहल का यह प्रयास स्तुत्य है।

'बनते-बिगड़ते कवि' शीर्षक अध्याय में नरेश मेहता के काव्य के मूल्यांकन के अंतर्गत संशय की एक रात पर विचार किया गया है। यद्यपि मूल्यों की दृष्टि से लेखक ने संशय की एक रात को नरेश मेहता की प्रौढ़ रचना स्वीकार किया है, फिर भी रचना में उपलब्ध जीवन-मूल्यों का नामोल्लेख तक नहीं किया है। जीवन-मूल्यों के नाम पर केवल युद्ध की सापेक्षता की ही चर्चा की है। युद्ध की अनिवार्यता के सन्दर्भ में डॉ० सिंहल ने नरेश मेहता को दिनकर के 'कुरुक्षेत्र' से प्रभावित बताया है। प्रस्तुत अध्ययन में लेखक ने नरेश मेहता की मूल्य प्रतिष्ठित करने की पद्धति का भी उल्लेख किया है। लेखक के मतानुसार नरेश मेहता ने संशय की एक रात में निषेधात्मक पद्धति से जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। युद्ध की अनिवार्यता को मूल्यों के प्रतिष्ठापन की निषेधात्मक पद्धति माना है।

डॉ० सिंहल ने संशय की एक रात में अभिव्यंजित कवि के चिन्तन के दो रूप बताए हैं। एक सामाजिक चिन्तन और दूसरा आध्यात्मिक चिन्तन। लक्ष्मण, हनुमान आदि पात्र सामाजिक चिन्तन के वाहक हैं और जटायु तथा दशरथ की मुक्त आत्माएँ आध्यात्मिक चिन्तन को लेकर चली हैं।

(4) डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय की पुस्तक छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि सन् 1972 ई० में रचना प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुई। पुस्तक में विवेचनाथे चुने गये हिन्दी छायावादोत्तर काव्य में संशय की एक रात को भी समाहित किया गया है। इस पुस्तक में 'सृजन प्रेरणा', 'वस्तु', 'प्रतीकात्मक चरित्र शैली', 'शैली और शिल्प' तथा 'युग जीवन-दर्शन' शीर्षकों के अन्तर्गत संशय की एक रात का विवेचन किया गया है।

डॉ० पाण्डेय ने पूरे राम काव्यों में साकेत (मेथिलीशरण गुप्त) और राम की शक्ति पूजा (सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला) में संशय की एक रात की परम्परा बतायी है। रचना की कथावस्तु की

(6) नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका पुस्तक वाणी प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुई। पुस्तक पर प्रकाशन का समय नहीं दिया गया है। पुस्तक के लेखक हैं - डॉ० हुकुम चन्द राजपाल। इस पुस्तक में हिन्दी नयी कविता की संशय की एक रात सहित नौ रचनाओं की समीक्षा की गयी है। पुस्तक के शीर्षक से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें केवल रचनाओं के शिल्प-विधान (काव्य-रूप) पर ही विचार किया गया है। जबकि सच्चाई यह नहीं है। विवेचनार्थ चुनी गयी रचनाओं के काव्य-रूप (काव्य-नाट्य) पर लिखने के साथ-साथ रचनाओं को विभिन्न दृष्टियों से मूल्यांकित किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में संशय की एक रात पर नौ शीर्षकों के अन्तर्गत विचार किया गया है - 1- वस्तु कथ्य, 2-मनोवैज्ञानिक पक्ष, 3-पात्र-संरचना, 4- मूल्यों का वैयक्तिक पक्ष, 5- सामूहिक बोध, 6- युग बोध, 7- राजनीतिक जीवन-दृष्टि, 8-काव्य-रूप और 9- मिथक योजना। डॉ० राजपाल ने 'मूल्यों का वैयक्तिक पक्ष' शीर्षकान्तर्गत युद्ध की सापेक्षता, कर्म, सत्य, न्याय एवं अधिकार पर विचार किया है। उक्त जीवन-मूल्यों को वैयक्तिकता के धरातल लाकर रख देना, उनके महत्व को कम करना है। ये समष्टिमूलक जीवन-मूल्य हैं। इस रूप में इनकी व्यावहार्यता सवेत्र देखी जा सकती है। समीक्ष्य कृति संशय की एक रात में भी इन मूल्यों की प्रतिष्ठा समाज के द्वारा ही हुई है, न कि व्यक्ति विशेष के द्वारा। अतः उपर्युक्त जीवन-मूल्यों के सन्दर्भ में डॉ० राजपाल की सोच तर्कसंगत नहीं है।

(7) डॉ० हरिचरण शर्मा की पुस्तक नयी कविता : नये धरातल पदम् प्रकाशन, जयपुर से सन् 1969 ई० में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में नयी कविता की महत्वपूर्ण रचनाओं का मूल्यांकन हुआ है। लेखक ने अन्य रचनाओं के मूल्यांकन की श्रृंखला में संशय की एक रात पर भी विभिन्न दृष्टियों से विचार किया है।

डॉ० शर्मा ने संशय की एक रात के प्रबन्धत्व को रेखांकित करते हुए इसमें नयी कविता धारा के विचारगत और शिल्पगत वैशिष्ट्य को देखने का प्रयास किया है। मूल्य-संघर्ष, सामाजिक विषमता, मानवीय दोर्बल्य, निराशा, कुंठा, घुटन और क्षणबोध नयी कविता की प्रवृत्तियाँ हैं। लेखक के अनुसार नयी कविता की उपर्युक्त विशेषताएँ संशय की एक रात में सहज ही प्राप्य हैं। संशय की

एक रात के सम्बन्ध में डॉ० शर्मा की यह मान्यता बताती है कि उन्होंने रचना को गम्भीरता से नहीं पढ़ा। नरेश मेहता ने इस रचना में अनेक स्थानों पर सामाजिक समानता की प्रतिष्ठा की है। सामाजिक विषमता कहीं देखने को नहीं मिलती। तब डॉ० हरिचरण शर्मा को इस रचना में सामाजिक विषमता सहज ही कैसे प्राप्त हो सकती है?

जीवन-मूल्यों के सन्दर्भ में डॉ० शर्मा ने केवल इतना ही लिखा है कि संशय की एक रात में आधुनिक युग के मूल्य और मान्यताओं को प्रस्तुत किया गया है। रचना में प्रस्तुत जीवन-मूल्यों का नामोल्लेख करना उन्होंने उचित नहीं समझा है इससे लेखक का प्रस्तुत अध्ययन अपूर्णता का बाचक बनकर रह गया है।

(8) डॉ० सन्तोष कुमार तिवारी की पुस्तक नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर जवाहर पुस्तकालय, मथुरा से सन् 1980 ई० में प्रकाशित हुई। डॉ० तिवारी ने इस पुस्तक में हिन्दी की नयी कविता धारा के प्रमुख कवियों की रचनाओं की समीक्षा की है। विवेचनार्थ चुनी गयीं नरेश मेहता की रचनाओं की श्रृंखला में 'संशय की एक रात : अन्तर्मथन और सामूहिक दायित्व बोध' शीर्षकान्तर्गत संशय की एक रात पर लेखक ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

कथानक की सर्गानुसार व्याख्या करने के पश्चात् डॉ० तिवारी ने संशय की एक रात को प्रशंसात्मक ढंग से मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। रचना को क्लासिक बताते हुए लेखक ने लिखा है कि इसमें कवि ने रामकथा के मूल स्वरूप को आँच नहीं आने दी है। कोई भी कथा कथानायक के चरित्र पर निर्भर रहती है। संशय की एक रात में राम को परम्परागत रामकथा से भिन्न रूप में चित्रित किया गया है। रचना के दूसरे सर्ग में दशरथ और जटायु का अवतरण कवि की मौलिक उद्भावना है। इससे पूर्व यह राम संबंधी किसी भी पुराख्यान में प्राप्त नहीं होता है।<sup>4</sup> इस स्थिति में डॉ० तिवारी की उपयुक्त मान्यता एकदम निराधार है।

(9) सन् 1980 ई० में ग्रन्थायन, अलीगढ़ से प्रकाशित अपनी पुस्तक नयी कविता : पुनर्मूल्यांकन में उषा रानी ने नरेश मेहता के काव्य का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके काव्य से प्रसंगवश कुछ संदभे भी दिये हैं। लेखिका ने संशय की एक रात से सम्बद्ध अपनी मान्यता को

प्रस्तुत पुस्तक में अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत किया है। लेखिका के मतानुसार भाषा, भाव और प्राकृतिक चित्रण की दृष्टि से यह रचना छायावादी कविता से प्रभावित है।

(10) नयी कविता के प्रबन्ध काव्यों पर केन्द्रित डॉ० उमाकान्त गुप्त की पुस्तक **नयी कविता के प्रबन्ध काव्य : शिल्प और जीवन-दर्शन** वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली से सन् 1985 ई० में प्रकाशित हुई। प्रस्तुत पुस्तक में छः अध्याय हैं - 1- नयी कविता के प्रबन्ध काव्य : परिचयात्मक परिबोध, 2-नयी कविता के प्रबन्ध काव्यों की सृजनात्मक प्रेरणाएँ, 3- कथ्य-विश्लेषण, 4- चरित्र-विधान, 5- शैल्पिक प्रतिमानों का सौंदर्य, 6- जीवन-दर्शन। **संशय की एक रात** पर न्यूनाधिक चर्चा प्रत्येक अध्याय में हुई है।

परिचयात्मक परिबोध में इस रचना का संक्षिप्त परिचय कराते हुए लेखक ने इसे विषय और शिल्प की दृष्टि से प्रौढ़ रचना बताया है। दूसरे अध्याय में **संशय की एक रात** को प्रायश्चित और परिताप के द्वन्द्व का काव्य रूपक मानते हुए युगीन सरोकार और परिवेशगत स्थितियों को इसकी सृजनात्मक प्रेरणा के श्रोत माना है। 'कथ्य-विश्लेषण' के अन्तर्गत रचना के कथानक की सर्गानुसार प्रस्तुति के साथ कवि की मौलिक उद्भावनाओं का भी उल्लेख किया है। राम के चरित्र में युद्ध से पूर्व संशय का आरोपण, दशरथ और जटायु की मुक्त आत्माओं का अवतरण, लक्ष्मण, विभीषण आदि पात्रों का राम को युद्ध-दर्शन समझाना और समाज के हित में राम द्वारा युद्ध को स्वीकार करना नरेश मेहता की मौलिक उद्भावनाएँ हैं। 'चरित्र-विधान' में पात्र विशेष के व्यक्तित्व और कृतित्व के आधार पर होने वाले चरित्र-चित्रण की पद्धति को अपनाते हुए काव्य-नायक राम और अन्य गौण पात्रों का चरित्र-चित्रण हुआ है। लेखक ने चरित्र-चित्रण में राम को प्रज्ञा पुरुष की गरिमा से च्युत बताया है। इस रचना में राम जिस दैन्य भाव के साथ हमारे सामने आते हैं, वह राम काव्य की परम्परा में कहीं नहीं मिलता है। अगले अध्याय 'शैल्पिक प्रतिमानों का सौंदर्य' में रचना का शैल्पिक दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है। अन्तिम अध्याय 'जीवन-दर्शन' में रचना के वैचारिक पक्ष का उद्घाटन किया है। **संशय की एक रात** में उपलब्ध आधुनिकता बोध, काल बोध, संशय बोध, अपमान बोध, युग बोध आदि को रेखांकित करते हुए डॉ० गुप्त ने इस रचना की मूल समस्या पर प्रकाश डाला है। लेखक के मतानुसार इस रचना की मूल समस्या वर्तमान सन्दर्भ में सम्पूर्ण मानवता को साथेकता प्रदान करने वाले मूल्यों के अन्वेषण की समस्या है। डॉ० गुप्त का प्रस्तुत अध्ययन

सराहनीय प्रयास है। उनके इस अध्ययन से नयी कविता के प्रबन्ध काव्यों का समझने में पूरी-पूरी सहायता मिलती है।

(11) डॉ० बनवारी लाल शर्मा का पी-एच०डी० का शोध प्रबन्ध **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्य** सन् 1972 ई० में रामा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत पुस्तक आठ अध्यायों में विभक्त है - 1- भूमिका, 2- प्रबन्ध-काव्य - परिचय, 3- कथा-वस्तु, 4- चरित्र-चित्रण, 5- रस-योजना, 6- भाषा-शैली, 7- प्रकृति-चित्रण, 8- युग दर्शन।

अन्तिम अध्याय को छोड़कर शेष सभी अध्यायों में चुने गये प्रबन्ध काव्यों का मूल्यांकन काव्यशास्त्रीय दृष्टि से किया गया है। इन अध्यायों में **संशय की एक रात** भी विवेचन का हिस्सा बनी है। चूँकि यह विवेचन काव्य शास्त्र की रूढ़ मान्यताओं की परिधि में ही किया गया है, इसलिए इससे कोई नवीन दिशा नहीं मिलती।

डॉ० शर्मा ने 'युग दर्शन' शीर्षक अध्याय में अवश्य कुछ नवीनता लाने का प्रयास किया है। इस अध्याय में लेखक का उद्देश्य विवेच्य काव्यों में उपलब्ध विचार तत्त्व को स्पष्ट करना रहा है। लेकिन, यहाँ लेखक ने **संशय की एक रात** की उपेक्षा की है। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० शर्मा को इस रचना में वैचारिकता का अभाव दीखा है। इसीलिए, इस अध्याय में उसकी चर्चा तक नहीं की गयी है।

(12) डॉ० सुन्दर लाल कथूरिया और डॉ० रवीन्द्र नाथ दरगन के शोधपरक लेखों का संग्रह **कविता : समकालीन कविता** सन् 1984 ई० में कुमार प्रकाशन, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में डॉ० कथूरिया के **युद्ध चिन्तन का आधुनिक आयाम : संशय की एक रात** शीर्षक लेख में **संशय की एक रात** को आधुनिक विचार दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित किया गया है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने लिखा है कि यह काव्य आधुनिकता बोध से परिचालित है। सप्रश्न दृष्टि आधुनिकता की अनिवार्य शर्त है, जिसका निर्वोह इस रचना में आद्यन्त हुआ है। डॉ० कथूरिया ने **संशय की एक रात** की **अन्धा युग** और **एक कंठ विषपायी** से तुलना भी की है। इन तीनों रचनाओं में युद्ध और शान्ति की समस्या को ही प्रस्तुत किया गया है। डॉ० कथूरिया ने स्पष्ट किया है कि उक्त समस्या



जिस जटिल मानसिकता के साथ **संशय की एक रात** में प्रस्तुत हुई है उस मानसिकता के साथ अन्य रचनाओं में नहीं हुई है।

**संशय की एक रात** में युद्ध और शान्ति की समस्या राम के माध्यम से प्रस्तुत की है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने कवि की इस प्रस्तुति को समीचीन न मानते हुए यह कहा है कि इस समस्या के लिए राम की अपेक्षा अर्जुन की प्रतीकात्मकता अधिक उपयुक्त थी। प्रस्तुत लेख में डॉ० कथूरिया ने **संशय की एक रात** की एक अन्य विसंगति की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि इस रचना में कथा नायक राम की अपेक्षा अन्य गौण पात्र (लक्ष्मण, हनुमान) अधिक सबल हो गये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गौण पात्रों के सामने राम जैसे सरीखे महामानव की स्थिति श्रीहीन हो गयी है।

(13) डॉ० महावीर सिंह चौहान तथा डॉ० सरोज पाण्ड्या द्वारा सम्पादित ग्रन्थ **नयी कविता की प्रबन्ध चेतना** सन् 1981 ई० में गिरनार प्रकाशन, मोहसाना, गुजरात से प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में नयी कविता के प्रबन्ध काव्यों पर केन्द्रित विभिन्न विद्वानों के लेख संगृहीत हैं। **संशय की एक रात** पर भी डॉ० महावीर सिंह चौहान का एक लेख इसमें संगृहीत है। लेख का शीर्षक है - **संशय की एक रात : मिथकीय कथा प्रसंग में नयी संवेदना, नया बोध**।

शीर्षक से ही ज्ञात होता है कि लेख में **संशय की एक रात** का मिथकीय दृष्टि से मूल्यांकन किया गया है। मिथक के सन्दर्भ में लेखक ने काव्य-नायक राम के चरित्र पर विशेष रूप से प्रकाश डाला है। दो विश्व युद्धों के बाद के संकट के बाद संकट बोध को नयी कविता के प्रबन्ध काव्यों में भली भाँति प्रस्तुत किया गया है। अधिकांश नये कवियों ने इस कार्य के लिए महाभारत के कथा-प्रसंगों का प्रयोग किया है। नरेश मेहता ने **संशय की एक रात** में इस कार्य को राम कथा के अत्यन्त सूक्ष्म प्रसंग के माध्यम से किया है। डॉ० चौहान ने नरेश मेहता के इस कार्य को चुनौतीपूर्ण और कठिन माना है। प्रस्तुत लेख में डॉ० चौहान ने काव्य-नायक राम की तुलना मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' लम्बी कविता के नायक से करते हुए यह बताया है कि दोनों काव्य-नायकों की स्थिति समान है। दोनों नायक आन्तरिक विकलता में जीते हैं। प्रस्तुत लेख में **संशय की एक रात** के प्रति डॉ० चौहान का दृष्टिकोण प्रशंसात्मक रहा है।

संशय की एक रात पर हुए लेखन कार्य के उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि इस रचना पर जीवन-मूल्यों की दृष्टि से अब तक कोई स्वतंत्र कार्य नहीं हुआ है। विभिन्न विद्वानों ने अपने शोध कार्य और समीक्षात्मक लेखन में इस रचना को प्रसंगवश ही स्थान दिया है। इस रचना पर जो लेख लिखे गये हैं उनमें भी मूल्यानुषंगिक चर्चा का अभाव है। उपर्युक्त समूचे अध्ययन में संशय की एक रात में उपलब्ध जीवन-दृष्टि को समग्रता में स्पष्ट नहीं किया गया है। कहीं-कहीं जीवन-मूल्यों की तरफ सकेत मात्र कर दिया है। संशय की एक रात पर जो कार्य हो चुका है, उसके केन्द्र में मुख्य रूप से रचना की मूल समस्या, कवि का उद्देश्य, मिथकीय दृष्टि, आधुनिकता बोध, अन्य रचनाओं से तुलना, चरित्र-चित्रण, मौलिक उद्भावनाओं का उद्घाटन, सृजन-प्रेरणा के स्रोत, काव्यरूप आदि मुद्दे रहे हैं। इस दृष्टि से प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध के विषय की नवीनता और मौलिकता स्वयं सिद्ध हो जाती है।

संशय की एक रात का जीवन-मूल्यों वाला पहलू इतना समृद्ध है कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। रचना के मूल्यपरक अध्ययन की आवश्यकता ने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित किया। प्रस्तुत प्रबन्ध में प्रस्तुत शोध कार्य के द्वारा संशय के एक रात के मूल्य-परक अध्ययन की आवश्यकता को पूर्णता प्रदान करने का एक लघु प्रयास किया गया है। मेरा यह प्रयास कृति मूलक शोध की दिशा को विकसित और परिमार्जित करने में सहयोग देगा। ऐसा मेरा विश्वास है।

संदर्भ :

1. अमरनाथ विद्यालंकार, 'एशिया की शांति तथा जेनेवा सम्मेलन' शीर्षक लेख, आजकल पत्रिका, अंक - सितंबर, सन् 1954 ई०, पृ० 56.
2. अवनीन्द्र कुमार, 'कोलम्बो कान्फ्रेंस' शीर्षक लेख, आजकल पत्रिका, अंक - जून, सन् 1954 ई०, पृ० 53-54.
3. जगदीश प्रसाद शर्मा, 'संसार की गतिविधि' शीर्षक लेख, सरस्वती पत्रिका, अंक - अप्रैल, सन् 1954 ई०, पृ० 290.
4. डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल शर्मा, उद्धृत -- डॉ० उमाकान्त गुप्त, नयी कविता के प्रबन्ध काव्य : शिल्प और जीवन-दशेन, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन् 1985 ई०, पृ० 86.

अध्याय – दो

### जीवन-मूल्य : स्वरूप विवेचन

#### मूल्य : परिभाषिक परिधियाँ :-

दैनिक जीवन में व्यावहारिकता, साहित्यिक प्रयोग और अर्थ विस्तार के कारण "मूल्य" शब्द बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अपेक्षाकृत अधिक व्याख्यायित हुआ है । आजकल यह शब्द अपने व्युत्पत्ति मूलक अर्थ की सीमा-रेखा का अतिक्रमण करके विभिन्न अनुशासनों में अलग-अलग संदर्भों में प्रयुक्त होकर नये-नये अर्थ दे रहा है । वैचारिक परिपेक्ष्य में नवीन दृष्टियों के स्पर्श से "मूल्य" शब्द के अर्थ में व्यापकता आई है । यह शब्द अर्थ विकास की प्रक्रिया से गुजरने के बाद अनेकार्थी शब्द का पद और प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है ।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विज्ञान की अप्रत्याशित उपलब्धियों ने वैचारिक धरातल पर क्रान्तिकारी परिवर्तन किए हैं । तर्क और चिन्तन की प्रधानता एवं बुद्धिवादी दृष्टिकोण की प्रबलता से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की सीमाएं या तो टूटीं या उनका विस्तार हुआ है । भाषा ने शब्द और अर्थ के स्तर पर अछूते आयामों को स्पर्श किया है और उनकी अर्थवत्ता को नवीन संदर्भों से जोड़ा है । परिणाम स्वरूप मूल्य शब्द में भी इस परिवेशजन्य अर्थ-विस्तार का समावेश हुआ है ।

"मूल्य" मूलतः आर्थिक जगत् का परिभाषिक शब्द है । अर्थशास्त्र में इसका अर्थ होता है- "विनिमय क्षमता " । अब यह शब्द दर्शन, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, साहित्यादि अनुशासनों का भी बहुचर्चित पारिभाषिक शब्द बन गया है । दर्शनशास्त्र में "मूल्य-मीमांसा" का विषय एक स्वतंत्र शास्त्र के रूप में विकसित हो चुका है । मूल्य-मीमांसा के अन्तर्गत मूल्य के स्वरूप, उसके प्रकार और उसकी तात्त्विक सत्ता का अध्ययन किया जाता है । यह "मूल्य" शब्द की हमारे जीवन में उपयोगिता और व्यापकता का ही परिणाम है ।

"मूल्य" हिन्दी का शब्द है । इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत की धातु "मूल" में "यत्" प्रत्यय के योग से

हुई है। इसका अर्थ—“किसी वस्तु के बदले में मिलने वाला धन, वेतन, लाभ, इष्ट आदि होता है।” “मूलेन अनाभ्यते अभियते मूलेन समं वा इति मूल” (नो वयो धर्मेत्यादिना) अर्थात् किसी वस्तु के बदले में मिलने वाला धन, कीमत।<sup>1</sup>

हिन्दी में मूल्य का प्रयोग अंग्रेजी के “वैल्यू” शब्द के अर्थ में होता है। वैल्यू शब्द लैटिन भाषा के ‘वैलियर’ शब्द से बना है, जिसका अर्थ होता है— अच्छा, सुन्दर।

अच्छाई और सुन्दरता ऐसे गुण हैं जिनसे युक्त होने पर ही कोई वस्तु इष्ट बनती है। ये गुण किसी के मूल्यन के आधार पर होते हैं।

‘मूल्य’ वह गुण है जिसका बोध अथवा प्रतीति सुख, पसंद अथवा उपयोगिता के आधार पर होती है। इसलिए पदार्थ का आन्तरिक गुण होते हुए भी मूल्य—बोध और मूल्यन व्यक्ति सापेक्ष होता है। कोई पदार्थ पसंद और उपयोगिता के आधार पर एक व्यक्ति के लिए मूल्यवान हो सकता है तो दूसरे के लिए अनुपयोगी और ना-पसंद होने के कारण मूल्यहीन। मूल्य किसी वस्तु की मांग और होने वाली पूर्ति की मात्रा के आधार पर निर्धारित होता है। इससे स्पष्ट होता है कि मूल्यन में पसंद के साथ-साथ दुर्लभता भी एक प्रभावक आधार है। एक अन्य संदर्भ में वह सबकुछ जो किसी को किसी कारणसात् झेलना, भुगतना या बलिदान करना पड़ता है वह मूल्य कहलाता है।

मूल्य संबंधी उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि मूल्य उपयोगिता के आधार पर निर्धारित प्रदेय होता है और यह बदले में चुकाया जाता है। ‘मूल्य’ शब्द का यह प्रयोग जब जीवन के साथ जुड़ जाता है तो उसके भीतर मानवीय संवेदनाएं सिमट आती हैं और यह मानव की इच्छा-आकांक्षाओं से जुड़ जाता है।

### जीवन मूल्य एवं उसके निर्माणक तत्व

#### जीवन मूल्य

जीवन एक सतत् गतिशील प्रक्रिया है। सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य इसका निर्वाह समाज की परिधि में रहकर करता है। मनुष्य ने जहां समाज को अस्तित्व प्रदान किया है वहीं समाज ने मनुष्य को मनुष्य रूप प्रदान किया है। मनुष्य समाज की गतिशील चेतना सम्पन्न वह इकाई है जो अपने विशिष्ट व्यक्तित्व से

समाज को प्रभावित करता है और समाज की सामूहिक सोच से प्रभावित एवं अनुशासित होता है । "वास्तव में व्यक्ति और समाज जीवन-मान्यताओं की दृष्टि से एक दूसरे के संबंध में ही सार्थक हैं और उसी रूप में समझे भी जा सकते हैं ।"<sup>2</sup> कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य और समाज एक-दूसरे के पूरक तथा अन्तः संबंधी हैं । मानवीय विवेक इस अन्तः संबंध में संतुलन बनाता है ।

मनुष्य और समाज का यही संतुलित अन्तः संबंध निरन्तर एक सुव्यवस्था की मांग करता है जिसका अभ्युदय मानव-प्रज्ञा के गर्भ से होता है । विकसित मानव-प्रज्ञा-प्रसूत व्यवस्था में लोक-जीवन और मानवता का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है । व्यवस्था निर्माण में संलग्न मानव-प्रज्ञा आधारहीन नहीं होती । इस कार्य-सम्पादन में उसे किसी-न-किसी मूर्त अथवा अमूर्त आदर्श अस्तित्व का सहारा लेना पड़ता है । क्योंकि आदर्श अस्तित्व ही जीवनोपयोगी और अनुकरणीय होते हैं । जीवनोपयोगिता और सहज अनुकरणीयता के कारण जीवन-व्यवस्था के आदर्श बोधक तत्त्व अथवा घटक ही जीवन-मूल्य के रूप में जाने जाते हैं । " जीवन के उच्चतर मूल्य आध्यात्मिक हैं - " सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् ।"<sup>3</sup> आध्यात्मिकता के सारे क्रिया-कलाप आदर्शोन्मुख होते हैं । मानव जीवन का सत्य कल्याणकारी और सुन्दर होने के कारण सबके आकर्षण का केन्द्र बिन्दु और सर्वोपरि आदर्श है ।

गिरिजा कुमार माथुर के मतानुसार - " मानव-मूल्य हमेशा आदर्श होते हैं, यथार्थ में उन्हें कभी ग्रहण नहीं किया जाता ।"<sup>4</sup> जीवन-मूल्यों का संबंध अनुभूति से है । इसलिए जीवन-मूल्य सदैव वैयक्तिक धरातल पर अंकुरित होकर समूह अथवा समाज के विस्तृत प्लेटफार्म की ओर उन्मुख होकर सर्व स्वीकृति पाते हैं । "मूल्य" मर्यादा की प्रगति के श्रोत को केवल सामाजिक परिस्थितियों के अधीन मानना उतना ही एकांगी दृष्टिकोण है जितना उसे केवल मनुष्य के आन्तरिक संस्कारों में मानना है । ' मानव-मूल्य के मूल बाहर-भीतर दोनों ओर फैले हुए हैं, ( तदन्तरस्थ सर्वस्य तत्सर्वस्यास्य बाह्यात् )। व्यक्ति और समाज उसके दो पक्ष हैं जिनमें सामंजस्य स्थापित करके ही स्थिति और प्रगति संभव हो सकती है । हम बाहर के संबंध में ही भीतर को, और भीतर के संबंध में बाहर को समझ पाते हैं । मानवता के सर्वांगीण विकास एवं निर्माण के लिए हमें भीतर और बाहर दोनों का रूपान्तर करना पड़ेगा ।"<sup>5</sup> जीवन-मूल्य लोगों के वैयक्तिक और सामाजिक दोनों प्रकार के व्यवहारों को

नियन्त्रित करते हैं। सच्चिदा नन्द सिन्हा के शब्दों में - " किसी भी समाज में कुछ मूल्य अनिवार्य रूप से धुरी का काम करते हैं, जिनके इर्द-गिर्द उस समाज के लोगों के सामाजिक और निजी व्यवहार नियन्त्रित होते हैं, और ये मूल्य किसी न किसी रूप में धार्मिक मान्यताओं के अंग होते हैं।"<sup>6</sup> धर्म एक ऐसी धारणा है जिसे मनुष्य धारण करता है और जिसके धारण करने में मनुष्य का हित अवश्यभावी होता है। " जो भी तत्त्व मानव मात्र के हितैषी हैं, आनन्द दायक हैं, वह सब जीवन-मूल्य की श्रेणी में आ जाते हैं।"<sup>7</sup> कुछ विद्वानों ने जीवन मूल्यों को पुरुषार्थों के पर्याय माना है। गोविन्द चन्द पाण्डेय के अनुसार - " जीवन-व्यवहार विभिन्न प्रवृत्तियों में बंटा रहता है और विभिन्न व्यावहारिक क्षेत्रों के साध्य ही सामान्यतया पुरुषार्थ या मूल्य कहलाते हैं।"<sup>8</sup> डा० हुकुम चन्द राजपाल लिखते हैं कि- " पुरुषार्थ जीवन-मूल्यों का पर्याय है।"<sup>9</sup> भारतीय दर्शन में जीवन के चार पुरुषार्थों - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणा है। धर्म, अर्थ और काम स्वरूपगत मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं और मोक्ष मानवीय जीवन का अन्तिम साध्य अथवा लक्ष्य है। इसलिए धर्म, अर्थ और काम को जीवन मूल्यों की श्रेणी में रखना सही है, लेकिन मोक्ष जीवन-मूल्य नहीं हो सकता। क्योंकि मूल्य साधन है साध्य नहीं। मूल्य वह प्रत्यय है जिससे अभीष्ट की प्राप्ति होती है। इसकी पुष्टि डा० देवराज के इस मत से हो जाती है- " लक्ष्य मूल्यों का उत्पादन है।"<sup>10</sup>

समस्त प्राणी जगत् में मूल्य ही वह इकाई है जो मानवीय और अमानवीय के बीच भेदक रेखा खींच सकती है। जीवन की मानवीय दृष्टि सृजनशील होती है। अपने सृजनशील रूप में मनुष्य मंगलमय जीवन की कामनाएं करता है। डा० वैजनाथ सिंहल ने इन कामनाओं को ही जीवन-मूल्य कहा है। उनके मतानुसार--"मूल्य मनुष्य की मानवी कामनाएं हैं।"<sup>11</sup>

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जीवन-मूल्य मनुष्य के सामूहिक विवेक, निर्णय और आस्था से उत्पन्न वह दृष्टिकोण है जो मनुष्य मात्र को अन्य जीवधारियों से अलग करते हुए व्यवस्थित जीवन जीने में संलग्न करता है।

### निर्माणक तत्व

जीवन-मूल्य की प्रक्रिया अनंत है। यह प्रक्रिया मूलतः सामाजिक है। " समाज के आरम्भ के साथ



ही मूल्य-प्रक्रिया का सूत्रपात हुआ है । यह प्रक्रिया समाज के साथ निरन्तर चलती रहती है । इस प्रक्रिया का द्वास-विकास समाज के साथ ही होता है ।<sup>12</sup> मनुष्य का सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन-प्रवाह मूल्यानुभूति के विशिष्ट क्षणों से आलोकित और निर्देशित होता है । मानवीय जीवन-प्रवाह के वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों धरातलों पर विविध घटनाक्रमों के प्रभाव स्वरूप जीवन-मूल्य बनते और विघटित होते रहते हैं ।

मनुष्य अकारण ही सामाजिक नहीं बना । सामाजिकता मनुष्य की बाध्यता है जो उसकी मूलभूत आवश्यकताओं और मूल प्रवृत्तियों के मध्य पनपती है । मनुष्य ने प्रारम्भ में अपनी आवश्यकताओं के तहत जो व्यवहार किया, वही व्यवहार बार-बार दुहराए जाने पर समाज में रूढ़ हो गया, जिसे कालान्तर में जीवन-मूल्य कहा गया । प्रारम्भ में समाज का रूप वह नहीं था जो आज है । प्राकृतिक अवस्था में मानवीय जीवन की असुरक्षा और अनिश्चितता से भयभीत मनुष्य ने अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए सामाजिक समझौता किया ।<sup>13</sup> यह समझौता सुखवादी मानवीय प्रज्ञा की मूर्त अभिव्यक्ति थी । इस समझौते में अव्यवस्थित मानवीय जीवन को व्यवस्थित एवं मर्यादित करने के लिए नवीन जीवन-मूल्यों का सृजन हुआ था ।

इससे स्पष्ट होता है कि जीवन-मूल्यों का निर्माण व्यक्ति और समाज दोनों की हित-भावना से सामूहिक अनुभूति और निर्णय के आधार पर होता है जिसकी पहल तर्कानुमोदित होने पर व्यक्तिगत भी हो सकती है । देश, काल एवं परिस्थितियों के अनुसार जीवन-व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों के निर्धारित तत्त्व जीवन-मूल्यों के निर्माणक तत्त्व होते हैं । मनुष्य का जीवन-व्यवहार उसके स्वभावगत ( नैसर्गिक ) और परिवेशगत ( अर्जित ) प्रभावों का क्रियात्मक रूप होता है । इसलिए जीवन-मूल्यों के निर्माणक तत्त्वों को नैसर्गिक एवं अर्जित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है ।

### ( अ ) नैसर्गिक तत्त्व

#### 1. मूल प्रवृत्तियाँ

" मूल प्रवृत्ति वंशागत अथवा जन्मजात मनोदैहिक प्रवृत्ति है, जो व्यक्ति को विशिष्ट प्रकार के पदार्थों के प्रत्यक्षीकरण के लिए व उनकी ओर ध्यान देने के लिए बाध्य करती है । उनके प्रत्यक्षीकरण से उसमें विशिष्ट प्रकार के संवेग उत्पन्न होते हैं और व्यक्ति में उनके प्रति विशिष्ट प्रकार की अनुक्रियाओं की

इच्छा होती है ।<sup>14</sup> प्रत्येक व्यक्ति में मैथुन, पलायन, वात्सल्य, संगशीलता, संग्रहवृत्ति, भूख आदि मूल प्रवृत्तियां नैसर्गिक होती हैं । मनुष्य इन प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर ही जैविक क्रियाएं करता है, जिनसे जीवन-मूल्यों का निर्माण होता है । सभ्यता की प्रगति के साथ मूल प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति के ढंग बदलते रहते हैं ।

## 2. अभिवृत्ति

" यह सामान्य रूप से किसी पदार्थ, व्यक्ति, संस्था या घटना के प्रति पक्षधरता अथवा विपक्ष के प्रतिवादन की स्थिति है ।"<sup>15</sup> यह स्थिति किसी से सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात् ग्रहीत अनुभवों से उत्पन्न होती है । आलफोर्ट के शब्दों में - " यह व्यवहार करने की तत्परता की मानसिक तथा तांत्रिकी स्थिति है जो अनुभवों के द्वारा व्यवहार पर पड़ने वाले निर्देशात्मक तथा प्रकार्यात्मक प्रभाव के फलस्वरूप निर्मित होती है ।"<sup>16</sup> समस्त सामाजिक अन्तः क्रियाओं का संचालन अभिवृत्तियों द्वारा ही होता है । जो अभिवृत्तियां सौंदर्यात्मक और आकर्षक होती हैं, उनसे परिचालित मानवीय क्रियाएं सहज ग्राह्य होकर जीवन-मूल्यों का रूप धारण कर लेती हैं । बी० कुप्पुस्वामी के मतानुसार--" सामाजिक अभिवृत्तियों में मूल्य निहित रहते हैं ।"<sup>17</sup>

## 3. सहानुभूति

" दूसरा व्यक्ति जो कुछ महसूस करता है उसे महसूस करने की हममें तुरन्त कोई अनुभूति होती है जिसे सहानुभूति कहा जाता है ।"<sup>18</sup> दूसरे की स्थिति को तत्क्षण यथारूप अनुभव करने से स्नेह और मित्रता का जन्म होता है । सहानुभूति से मानवीय जीवन में रागात्मकता, मैत्री एवं सहयोग की भावना संचरित होती है । जिससे सामंजस्य की स्थिति बनती है । सामंजस्य से मनुष्य रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित होता है जिससे जीवन मूल्य निष्पन्न होते हैं । "रामायण" की रचना का आधार वाल्मीकि द्वारा क्रौंच-वध की पीड़ा को उसी रूप में अनुभव कर लेना अथवा सहानुभूति ही थी । ऐडम स्मिथ ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि हमारी न्याय भावना सहानुभूति से ही उत्पन्न होती है ।

## 4. अनुकरण

" अनुकरण में वैसी क्रिया की जाती है जैसी व्यक्ति करता है ।"<sup>19</sup> अनुकरण तीन प्रकार का होता है

प्रथम- धीरे-धीरे बिना जाने बूझे अनुकरण, द्वितीय- शीघ्र, तुरन्त और अविचारित अनुकरण एवं तृतीय- चेतना पूर्वक सोच-समझकर किया गया अनुकरण । उपरोक्त तीनों प्रकार के अनुकरण से मनुष्य की जीवन-दृष्टि बनती है । उदाहरण के लिए नेपोलियन का अनुकरण करने वाले जीवन-मूल्य क्रान्ति, हिंसा और अधिकार भावना पर आधारित होंगे और गांधी का अनुकरण करने वाले मनुष्य के जीवन-मूल्यों में शान्ति, सत्य और अहिंसा महत्वपूर्ण होंगे ।

### 5. आवेग

" सामान्यतः समझा जाता है कि आवेग प्रोत्साहन से युक्त तीव्र मांसिक दशाएं हैं, जो मनोभावों और उत्तेजनाओं को बढ़ावा देती हैं ।"<sup>20</sup> आवेग अस्थायी होते हैं । ये स्थिति के अनुसार उत्पन्न होते हैं । जब आवेग उत्पन्न होते हैं तब शरीर में कम्पन होने लगता है और मनुष्य की क्रियाएं तेज हो जाती हैं । आवेग सभी व्यक्तियों में समान नहीं होते । इनमें वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है । जिससे विभिन्न व्यक्तियों की कार्य प्रणाली में भिन्नता आ जाती है । कार्य प्रणाली की भिन्नता के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न मनुष्यों के जीवन मूल्य भी भिन्न-भिन्न हो जाते हैं । कामुक और संयमित व्यक्तियों के जीवन-मूल्यों में जो अन्तर पाया जाता है उसका कारण आवेगों की भिन्नता ही होती है ।

### 6. अनुभूतियां

" अनुभूति किसी वस्तु, परिस्थिति या क्रिया के संबंध में एक व्यक्ति का अपना आन्तरिक भाव है ।"<sup>21</sup> अनुभूति का संबंध वैयक्तिक भावों से होता है । भावों की वैयक्तिक भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की अनुभूतियों में भेद होता है । सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा भावुक व्यक्ति की अनुभूति गहरी और तीव्र होती है । एक भावशून्य व्यक्ति जिस घटना को देखकर यों ही भुला देता है उसी घटना की प्रगाढ़ अनुभूति से भावुक कवि कालजयी रचनाएं लिख देता है । अनुभूति की इस भिन्नता के कारण ही गोहत्या को हिन्दू धर्म और इस्लाम के अनुयाइयों ने अलग-अलग जीवन-मूल्यों के रूप में स्वीकार किया है ।

### 7. अभिरूचि

" संबंधक अथवा किसी वस्तु से व्यक्तिगत संबंध रखने वाले की अनुभूति, अर्थात् ऐसे किसी संबंध या

विशिष्ट रूप या इसके स्थानापन्न की यथोचित अनुभूति की दशा, अतः संबंधक की अनुभूति या व्यक्ति अथवा वस्तु के विषय में जिज्ञासा अभिरूचि कहलाती है ।<sup>22</sup> मनुष्य की अभिरूचियों का निर्माण पारिवारिक और सामाजिक वातावरण के आधार पर होता है । मनुष्य की अभिरूचियां उसे ऐसे काम करने और ऐसे पदार्थों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती हैं जिनसे उसे प्रसन्नता मिले अथवा आत्म संतुष्टि हो । अभिरूचियां मनुष्य की लक्ष्य-सिद्धि में सकारात्मक भूमिका निभाती हैं । और लक्ष्य के अनुरूप भी अभिरूचियों का निर्माण होता है । लक्ष्य और जीवन-मूल्यों में कार्य-कारण का संबंध है । अन्ततः अभिरूचियां मनुष्य के जीवन-मूल्यों के निर्माण में प्रभावकारी होती हैं ।

### 8. पूर्वाग्रह

" किसी अनिश्चित, अप्रमाणित या विवादास्पद बात या विषय के संबंध में वह आग्रह पूर्वक धारणा जो पहले से बिना जाने या समझे-बूझे अपने मन में स्थिर कर ली गयी हो पूर्वाग्रह कहलाती है ।"<sup>23</sup> पूर्वाग्रह मोह या निर्मोह के कारण जन्म लेता है । परीक्षण का अभाव, भाव प्रबलता, अविवेक आदि से पूर्वाग्रह पुष्ट होते हैं । पूर्वाग्रह में हठ और जड़ता का समावेश रहता है । पूर्वाग्रह सही निर्णय और निष्कर्षों तक पहुंचने में बाधक होते हैं । ये मानवता के प्रति अभिशाप होते हैं । क्योंकि इनसे अन्याय होने की संभावनाएं बनी रहती हैं । हरिजन जाति का व्यक्ति सब प्रकार से समर्थ होने पर भी सवर्णों के पूर्वाग्रह के कारण समाज में यथोचित सम्मान नहीं पा सकता । वस्तुतः पूर्वाग्रह जब जीवन-व्यवहार में मुखरित होता है तो उससे जीवन-मूल्य प्रभावित होते हैं ।

### 9. आनुवंशिकता

" आनुवंशिकता माता-पिता तथा अन्य पूर्वजों से संतति में रूप, रंग, स्वभाव तथा अन्य लक्षणों के आने को कहते हैं ।"<sup>24</sup> आनुवंशिकता से वंशानुक्रमण होता है, जिससे एक वंश की सब पीढ़ियों के जीवन में एकरूपता आती है । यह प्रक्रिया संतान के अस्तित्व में आने के समय ही पित्रैक (जीन्स) के द्वारा सम्पन्न हो जाती है । " जीवों में नर के शुक्राणु तथा स्त्री की अंडकोशिका के संयोग से संतान की उत्पत्ति होती है । शुक्राणु तथा अंडकोशिका दोनों में केन्द्रक सूत्र रहते हैं । इन केन्द्रक सूत्रों में स्थित पित्रैक (जीन्स) के स्वभावानुसार संतान के मानसिक तथा शारिरिक गुण और दोष निश्चित होते हैं ।"<sup>25</sup> वस्तुतः माता-पिता की

शारीरिक एवं मानसिक विशेषताएं और उनकी विचार संपदा पित्रैको द्वारा संतानों में संक्रमित होती है और इसी के आधार पर संतानों के जीवन-मूल्य निर्मित होते हैं ।

(आ) अर्जित तत्व

### 1. प्रेरणा

" साधाण अर्थ में प्रेरणा व्यवहार के 'क्यों' की व्याख्या करती है । यह जीवधारी की आन्तरिक जीवन-रीति को निर्देशित करती है, जो प्रोत्साहन, दृढ़ता, शारीरिक बल और व्यवहार की दिशा को मार्ग दिखाती है ।"<sup>26</sup> प्रेरणा व्यक्ति की एक आन्तरिक शक्ति है । यह उत्तेजना का रूप ले लेने के बाद व्यक्त होती है । प्रेरणा व्यक्ति की क्रियाओं को आरम्भ करने और क्रियाओं की गति को अन्त तक बनाये रखने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करती है । व्यक्ति के जीवन-व्यवहारों के मूल में कोई न कोई प्रेरणा होती है । डफी तथा हेव के मतानुसार- " अभिप्रेरणा के स्तर में तथा व्यवहार की प्रबलता में साधारणतया सीधा अनुपात होता है ।"<sup>27</sup> वस्तुतः व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति घटना अथवा स्थिति विशेष से प्रेरित होकर व्यवहार करता है जिससे उसके जीवन-मूल्य निर्मित होते हैं । जीवन मूल्यों की उत्पत्ति में प्रेरणा दो प्रकार की भूमिका निभाती है । प्रथम- प्रेरक के अनुरूप, द्वितीय- प्रेरक के प्रतिरूप । पाश्चात्य देशों में बढ़ती उच्छृंखलता की प्रेरणा से हमारे देश में आई यौन उच्छृंखलता या नग्नता प्रेरक के अनुरूप है । अंग्रेजों की काले-गोरे की भेद नीति से प्रेरित होकर गांधी जी ने जाति-भेद और ऊँच-नीच की बुराई को समाप्त कर सामाजिक समानता लाने का जो प्रयास किया वह प्रेरक के प्रतिरूप था ।

### 2. आदर्श

" वह जिसके रूप और गुण आदि का अनुकरण किया जाय, आदर्श होता है ।"<sup>28</sup> आदर्श प्रेरणा और अनुकरण का आधार होते हैं । गुण-वैशिष्ट्य के आधार पर मानव समाज में प्रतिष्ठित महापुरुषों के बारे में हमें साक्षात्कार, श्रुति अथवा पुस्तकों से सीखने को मिलता है । हम अपनी मनोकूल विशेषताओं के आधार पर किसी को आदर्श मान लेते हैं । एक व्यक्ति के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के अलग-अलग आदर्श भी हो सकते हैं । मनुष्य अपने जीवन-व्यवहार से प्रेरित होकर ही जीवन में प्रवृत्त होता है, अर्थात् अपने आदर्श के जीवन-मूल्यों

का अनुकरण करता है । जीवन में भटकाव की स्थिति से बचने के लिए मनुष्य ऐसा करता है । वस्तुतः मनुष्य के आदर्श जीवन-मूल्यों को गहराई से प्रभावित करते हैं ।

### 3. तर्क

" किसी तथ्य, धारणा, विचार, विश्वास आदि की सत्यता जांचने के लिए अथवा उसके समर्थन या विरोध में कही हुई कोई तथ्यपूर्ण युक्ति-संगत तथा सुविचारित बात तर्क कहलाती है ।"<sup>29</sup> तर्क बुद्धिजन्य होता है । रूढ़ि और पूर्वाग्रहों से आदृत सत्य तक तर्क से ही पहुंचा जाता है । तर्क-वितर्क से मनुष्य का दृष्टिकोण वैज्ञानिक बनता है । अतः जब कोई पूर्वाग्रही अथवा अंध विश्वासी जीवन-मूल्यों वाला मनुष्य बुद्धिमान व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है तो उनके तर्कों से उसका भ्रम और पूर्वाग्रह टूटते हैं । वह सही स्थिति तक पहुंचता है, जिससे उसके जीवन मूल्यों में परिवर्तन हो जाता है ।

### 4. सुझाव

थाउलैस के अनुसार— "सुझाव शब्द का प्रयोग सामान्यतः तार्किक दबाव को छोड़कर किसी ऐसी प्रक्रिया के लिए किया जाता है जिसके द्वारा विचारों की एक व्यवस्था के प्रति एक मनोवृत्ति को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में संचालित किया जाता है ।"<sup>30</sup> सुझाव से मनुष्य की जीवन-दृष्टि को निश्चित दिश मिलती है । जब व्यक्ति संकट अथवा और किसी कारण से तर्कशून्य या संशयग्रस्त हो जाता है तब उसे सुझाव की आवश्यकता पड़ती है । सुझाव हमेशा विशेषज्ञता और अनुभव के आधार पर दिये जाते हैं । सुझाव से मनुष्य के व्यवहार में स्थापित्व और क्रमबद्धता आती है, जिससे जीवन-मूल्य प्रभावित होते हैं ।

### 5. संविधान

" देश अथवा राज्य में व्यवस्था, शान्ति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए शासन या प्रभुसत्ताधारी संस्था के द्वारा बनाया हुआ ऐसा नियम-समूह जिसका पालन वहां के सभी निवासियों के लिए अनिवार्य और आवश्यक होता है और जिसकी उपेक्षा या उल्लंघन करने वाला दण्ड का भागी होता है संविधान कहलाता है ।"<sup>31</sup> संविधान में कानून संगृहीत होते हैं । कानून राजनैतिक वैधता प्राप्त होते हैं । इनका पालन करना देश के नागरिकों के लिए अनिवार्य होता है । कानून सामाजिक अन्तःक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं । इसलिए इनका संबंध जीवन

मूल्यों से स्वतः ही हो जाता है । श्री राधाकमल मुकुर्जी के मतानुसार— "क़ानून का अनिवार्य कार्य राजनैतिक सत्ता द्वारा या किसी समुदाय द्वारा मानवीय मूल्यों की सुरक्षा तथा स्थायित्व रखना, वृद्धि करना और उनमें सामंजस्य बिठाए रखना ही है ।"<sup>32</sup> राजशक्ति से मुक्त होने के कारण क़ानून के क्रियान्वयन से समाज के जीवन मूल्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाते हैं । भारतीय संविधान में उल्लिखित आरक्षण संबंधी क़ानून के क्रियान्वयन से भारतीय समाज के राजनैतिक, आर्थिक जीवन मूल्यों में परिवर्तन आया है ।

## 6. युद्ध

मनुष्य की अधिकारवांक्षा से उद्भूत युद्ध एक ऐसी घटना है जो जीवन-मूल्यों को सर्वाधिक प्रभावित करती है । डा० रामदास मिश्र के शब्दों में,— " युद्ध एक ऐसी घटना है जिसका संबंध केवल अनुभूति से नहीं है मूल्यों से, विवेकानुभव से और जीवन दृष्टि से है ।"<sup>33</sup> सन् 1662 ई० में चीनी आक्रमण के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में हमारे देश के प्रति बरती गयी उदासीनता ने भारतीय बुद्धिजीवियों के रूख को बदल दिया था । अब वे अन्तर्राष्ट्रीयता की बात न करके देशीय जनता के दुःख-सुख से जुड़े और राष्ट्रीय हितों की बात करने लगे ।

## 7. संस्कृति

" संस्कृति उस दृष्टिकोण को कहते हैं जिसमें कोई समुदाय विशेष जीवन की समस्याओं पर निर्भर करता है । यह दृष्टिकोण कई बातों पर निर्भर करता है । थोड़े में हम कह सकते हैं कि समुदाय की वर्तमान अनुभूतियों के संस्कारों के अनुरूप उसका दृष्टिकोण होता है ।"<sup>34</sup> संस्कृति एक विचार होता है जो सभ्यता के रूप में अभिव्यक्ति पाता है । " संस्कृति संस्कारी व्यक्तियों का ही क्रियमाण रूप है ।"<sup>35</sup> यह परिवर्तनशील है । मनुष्य के जीवन-मूल्य उसकी संस्कृति के गर्भ से पैदा होते हैं । गोविन्द चन्द पाण्डे के मतानुसार — " संस्कृति विचारशील व्यक्ति के समक्ष मूल्यों को उपादानवत् प्रस्तुत करती है जिसके आधार पर वह स्वयं अपने मूल्य गढ़ता है ।"<sup>36</sup> इसलिए संस्कृति की भिन्नता और विकास जीवन-मूल्यों में स्पष्ट दिखाई देता है ।

## 8. शासन व्यवस्था

मानवीय जीवन में व्याप्त अव्यवस्था और जटिलता के निवारणार्थ शासन को व्यवस्थित किया गया है ।

यह मनुष्य के राजनीतिक चिन्तन के विकास का परिणाम है । देश की राजनीति से जनता का सीधा संबंध है । इसीलिए शासन-व्यवस्था जीवन-मूल्यों को गहराई से प्रभावित करती है । नागरिकों की मनोवृत्ति एवं विचारधारा वहां की शासन-व्यवस्था के अनुरूप ही बनती है । लोकतंत्रात्मक और राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था वाले अलग-अलग देशों में जीवन-मूल्य भिन्न होते हैं ।

## 9. धर्म

आध्यात्मिक शक्ति में मनुष्य के विश्वास और श्रद्धा से व्युत्पन्न धारणाओं के समूह को धर्म की संज्ञा दी जाती है । एडवर्ड टायलर " आध्यात्मिक शक्ति में होने वाले विश्वास को ही धर्म स्वीकार करते हैं ।"<sup>37</sup> धर्म में मनुष्य पूजा, अर्चना, व्रत, नमाज़, रोज़ा आदि के द्वारा अलौकिक सत्ता से सम्पर्क स्थापित करता है । धर्म किसी महापुरुष द्वारा प्रवर्तित अथवा मान्य ग्रन्थ पर आश्रित होते हैं । मनुष्य धर्म से आत्मानुशासित होकर जीवन में प्रवृत्त होता है । धर्म से व्युत्पन्न कर्तव्य कल्याणकारी होते हैं । प्राचीन काल से धर्म ने ही व्यक्ति और समाज का नियमन किया है । इस नियमन ने जीवन-मूल्यों को युगानुरूप प्रभावित किया है ।

## 10. दर्शन

" प्रकृति, आत्मा, परमात्मा, जगत् के नियामक धर्म, जीवन के अन्तिम लक्ष्य इत्यादि का जिस शास्त्र में निरूपण हो उसे दर्शन कहते हैं ।"<sup>38</sup> दर्शन सत्यान्वेषण का एक संदर्भ होने के कारण चिन्तन-मनन प्रधान अनुशासन है । इसमें जीवन के समस्त पहलुओं पर विचार किया जाता है । जीवन-मूल्य मूलतः दर्शन का ही विषय है । डा० देवराज ने दर्शन के कार्य के उल्लेख में इसकी पुष्टि की है । उनके अनुसार - " दर्शन का कार्य मनुष्य या मानव जीवन से संबंधित परम मूल्यों की प्रकृति का अन्वेषण या उद्घाटन है ।"<sup>39</sup> दार्शनिकों की चिन्तना उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है । इसका जीवन मूल्यों पर सीधा प्रभाव पड़ता है । भारतीय दर्शन में कर्मकाण्ड प्रधान वैदिक दर्शन ने जीवन के प्रति आस्था तथा जीवन के उल्लास को केन्द्र में रखकर जीवन-मूल्य स्थापित किये तो इसके विपरीत जैन और बौद्ध दर्शन में जीवन से विरक्ति तप, त्याग, और अहिंसा आदि जीवन-मूल्यों को स्थान मिला ।

## 11. नीति



" आहार-व्यवहार आदि का वह प्रकार या रूप जो बिना किसी का अपकार किये या किसी को कष्ट पहुंचाए अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी मंगलकारी, शुभ तथा सम्मान जनक हो नीति कहलाता है ।" नैतिकता मनुष्य के व्यवहार के विषय में सत्यासत्य का विवेचन करते हुए मनुष्य को शुभ की ओर प्रेरित करती है । वस्तुतः नीति और जीवन-मूल्य स्वरूप और कार्य के आधार पर बहुत कुछ समान हैं । दोनों ही आदर्शात्मक और मानव-हित की भावना से ओत-प्रोत हैं । मनुष्याचरण के संबंध में निर्णयात्मक भूमिका निभाते हुए नीति समाज में जीवन-मूल्यों का निर्धारण करती है । डा० मोहिनी शर्मा ने जीवन-मूल्यों को " नीति शास्त्र की देन"<sup>41</sup> माना है ।

## 12. शिक्षा

शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली ऐसी प्रक्रिया है जो मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक दोनों व्यक्तित्वों का विकास करती है । शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है । संस्कृति और सभ्यता का पीढ़ी दर पीढ़ी स्थानान्तरण शिक्षा द्वारा ही होता है । शिक्षा से मनुष्य अतीत के जीवन-मूल्यों और वर्तमान के जीवन-मूल्यों के बारे में सीखता है और अपनी मूल्य दृष्टि निर्धारित करता है । वस्तुतः शिक्षा से मनुष्य इस योग्य बनता है कि वह विभिन्न संस्कृतियों और समाजों के जीवन-मूल्यों में एकरूपता लाने का प्रयास करते हुए उनका यथोचित प्रयोग कर सके । डा० देवराज ने शिक्षा का उद्देश्य बताते हुए कहा है कि --- " शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति में ऐसी योग्यताओं को उत्पन्न करना जिनके द्वारा वह विभिन्न मूल्यों की सृष्टि, सुरक्षा तथा उपभोग कर सके ।"<sup>42</sup> अतः शिक्षा जीवन-मूल्यों का एक प्रमुख निर्माणक तत्व है ।

## 13. विज्ञान

" किसी विशिष्ट विषय के तत्वों या सिद्धान्तों आदि का विशेष रूप से प्राप्त किया हुआ ज्ञान, जो ठीक क्रम से एकत्र या संगृहीत हो विज्ञान कहा जाता है ।"<sup>43</sup> विज्ञान तर्क और प्रयोगों पर आधारित होता है । इससे मनुष्य की भावजन्य स्थापनाएं, पूर्वाग्रह, रूढ़ियां आहत होकर छिन्न-भिन्न हो जाती हैं ।

सत्याधारित वैज्ञानिक उपलब्धियों ने मानव-जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है । आधुनिकता वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ही परिणाम है । ईश्वर के अस्तित्व पर भी जो प्रश्न-चिह्न लगा है वह विज्ञान ने ही

लगाया है ।

#### 14. कला

" कला आवेगात्मक अनुभूति की सम्भावनाओं की चेतना और उपभोग है अथवा उन क्रियाओं को समाज-ग्राह्य प्रतीकों में प्रकट करने का प्रयत्न है ।"<sup>44</sup> कलाकार अनुभूति के स्तर पर मानव-जगत् से अंतरंगता स्थापित करने के बाद कला-सृजन में प्रवृत्त होता है । इससे कला में सत्यात्मक व्यापकता आती है । जिसमें शिवता और सौन्दर्य का भाव सन्निहित रहता है । सन्तुष्ट और श्रेष्ठ जीवन की प्राप्ति हर कलाकार का लक्ष्य होता है । इसी लिए वह यथार्थ और कल्पना के समिश्रण से सुष्ठ और नूतन जीवन की प्रस्तुति करके स्वान्तःसुखाय की स्थिति से जुड़ता है । कलाओं में जीवन-मूल्यों का उदात्त रूप उभरता है । जिससे कलाओं के अध्येताओं की जीवन-दृष्टि प्रभावित होती है । डा० देवराज के शब्दों में - " कला का हमारे लिए विशेष महत्व यही है कि उसमें मूल्य निहित होते हैं ।"<sup>45</sup>

#### 15. प्राकृतिक घटनाएं

भूकम्प, बाढ़, ओलावृष्टि, महामारी, अकाल, तूफान आदि ऐसी प्राकृतिक घटनाएं हैं जिनसे मनुष्य के अस्तित्व के सामने प्रश्न-चिह्न लग जाता है । इन घटनाओं से जीवन-व्यवस्था विश्रृंखलित हो जाती है । मनुष्य आत्म केन्द्रित होकर अत्मरक्षा में जुट जाता है । मनुष्य के समस्त जीवन-मूल्य सिमट कर स्वार्थपरता में समाहित हो जाते हैं । प्राकृतिक नर संहारक घटनाओं के दौर में जीवन-मूल्य महत्वपूर्ण हो जाते हैं । चाहे वे स्वार्थोन्मुखी ही क्यों न हों । इस संकट के पड़ने से मनुष्यों का जीवन-स्तर गिर जाता है । इससे उनके जीवन-मूल्यों में आमूल परिवर्तन हो जाता है ।

#### 16. भौगोलिक स्थिति

भौगोलिक स्थिति, जलवायु और भौतिक साधनों (खनिज-सम्पदा) के रूप में मनुष्य के भौतिक जीवन पर प्रभाव डालती है जिससे उसकी वैचारिक दृष्टियां भी प्रभावित होती हैं । जहां खनिज पदार्थों का आधिक्य होता है वहां की जनता का जीवन-स्तर ऊंचा होता है जिससे लोगों की मानसिकता उपभोन्मुख हो जाती है । इसके विपरीत भौतिक साधनों की कमी वाले क्षेत्रों की जनता का जीवन-स्तर नीचा रहता है जो व्यक्ति को

पुरुषार्थी बनाता है । वहां परिश्रम जीवन का प्रथम मूल्य होता है । गर्म और ठंडी जलवायु के लोगों की जीवन-दृष्टि, रहन-सहन और सोचने के ढंगों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है । वस्तुतः भौगोलिक स्थिति भी जीवन मूल्यों को प्रभावित करने वाला एक प्रमुख तत्व है ।

### जीवन मूल्यों का वर्गीकरण

" मूल्य गहरे, ऊंचे, जटिल विषय हैं और ऐसा ही उनका ज्ञान है ।"<sup>46</sup> स्वरूप की इस जटिलता के कारण जीवन-मूल्यों का तर्क-सम्मत और सर्वमान्य वर्गीकरण कर पाना जटिल कार्य हो गया है । विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से जीवन-मूल्यों का वर्गीकरण किया है । भारतीय दर्शन में पुरुषार्थों की अवधारणा के आधार पर जीवन-मूल्यों के दो भेद किये गये हैं --

1. साधनात्मक जीवन-मूल्य एवं

2. साध्यात्मक जीवन-मूल्य

चतुर्वर्ग-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म, अर्थ और काम साधनात्मक मूल्य हैं । मोक्ष साध्यात्मक मूल्य है । इस वर्गीकरण को स्वीकार करने में प्रमुख कठिनाई यह है कि इसमें साध्यात्मक मूल्य ( मोक्ष ) का जो उल्लेख किया गया है वह जीवन-मूल्य नहीं होता । वह जीवन का अन्तिम लक्ष्य अथवा साध्य है जिसकी अपलब्धि मूल्यों के द्वारा होती है ।

डा० देवराज ने भारतीय दर्शन में हुए मूल्य-विभाजन में ही आंशिक शब्द-परिवर्तन करके मूल्यों के दो भेद किये हैं । उनके मतानुसार--" मूल्य दो प्रकार के होते हैं, एक चरम तथा दूसरे साधनात्मक ।"<sup>47</sup>

डा० हुकुमचन्द राजपाल ने जीवन-मूल्य चार प्रकार के माने हैं--

1. भौतिक

2. मानसिक या मनोवैज्ञानिक

3. सामाजिक या सात्त्विक और

4. आध्यात्मिक ।<sup>48</sup>

जीवन-मूल्यों का यह वर्गीकरण विषय को ध्यान में रखकर किया गया है । इस वर्गीकरण में राजनैतिक,

धार्मिक, नैतिक आदि मूल्यों को समाहित नहीं किया गया है । एक ही अर्थ में प्रयुक्त सामाजिक और सात्विक जीवन-मूल्यों में पर्याप्त अन्तर होता है । यह आवश्यक नहीं कि सभी सामाजिक मूल्य सात्विक हों । डा० हेमन्त कुमार पानेरी ने जीवन-मूल्यों का वर्गीकरण दो आधारों पर किया है । प्रथम - परिवर्तनशीलता के आधार पर--

1. स्थिर मूल्य और 2. गतिशील मूल्य ।

द्वितीय - यथार्थ परकता और भाव परकता के आधार पर --

1. यथार्थ परक मूल्य और 2. भावपरक मूल्य ।

जीवन एक सतत् विकासशील प्रक्रिया है । संस्कृति, सभ्यता और ज्ञान-विज्ञान के विकास के साथ-साथ जीवन बदलता रहता है । इस दशा में जीवन-मूल्य कभी स्थिर नहीं हो सकते । डा० हेमन्त कुमार द्वारा परिवर्तनशीलता के आधार पर किये गये मूल्य वर्गीकरण से ऐसा प्रतीत होता है कि मानव-जीवन के अस्तित्व में आते समय ही कुछ मूल्य निर्धारित कर दिये गये थे जो आज तक चले आ रहे हैं । इस दृष्टि से यह वर्गीकरण स्वीकार्य नहीं है ।

डा० भरत कुमार सिंह ने मूल्य वर्गीकरण को मूल्य-आयाम के रूप में प्रस्तुत किया है । उन्होंने मूल्य वर्गीकरण के लिए स्वरूप, गति, तत्त्व, मूलभूत और परिणाम को आधार रूप में ग्रहण किया है । डा० सिंह का मूल्य-विभाजन इस प्रकार है--

1. स्वरूप की दृष्टि से -

1. धनात्मक / भावात्मक मूल्य ( पाज़िटिव वैल्यू )
  2. ऋणात्मक / अभावात्मक मूल्य ( निगेटिव वैल्यू )
- (क) अमूर्त मूल्य ( ऐब्सट्रेक्ट वैल्यू )
- (ख ) मूर्त मूल्य ( कांक्रीट वैल्यू )
- अ. आन्तरिक मूल्य ( इंट्रिज़िक वैल्यू )
- आ. बाह्य मूल्य ( ऐक्सट्रिज़िक वैल्यू )

2. गति की दृष्टि से -

1. स्थाई मूल्य ( परमानेन्ट वैल्यू )

2. अस्थाई मूल्य ( ट्रांसिएन्ट वैल्यू )

(क) गतिशील मूल्य ( डाइनेमिक वैल्यू )

(ख) स्थिर मूल्य ( स्टेटिक वैल्यू )

(अ) सामयिक / समसामयिक मूल्य (कन्टेम्पोरेरी वैल्यू)

(आ) क्षणिक मूल्य ( टेम्पोरेरी वैल्यू )

3. तत्व की दृष्टि से - (भौतिक - अभौतिक )

1. स्वाभाविक / तात्त्विक (इन्ट्रिन्सिक वैल्यू )

2. अस्वाभाविक / कृत्रिम / वैज्ञानिक अथवा भौतिक मूल्य (अननेचुरल आर फ़िज़िकल वैल्यू)

(क ) परम / अन्तिम मूल्य (ऐब्सोल्यूट वैल्यू )

(ख) निमित्त मूल्य ( इन्स्ट्रुमेन्टल वैल्यू )

(ग) साध्यगत मूल्य (ऐब्सल्यूट वैल्यू)

4. मूलभूत की दृष्टि से-

1. मूलभूत मूल्य (फ़ण्डामेन्टल आर ओरिजिनल वैल्यू )

2. प्रारम्भिक मूल्य ( बेसिक वैल्यूज़ )

3. प्राथमिक मूल्य ( प्राइमरी वैल्यूज़ )

5. परिणाम की दृष्टि से-

1. गुणात्मक (क्वालिटेटिव वैल्यू )

2. संख्यात्मक (क्वांटिटेटिव वैल्यू )

3. साध्यगत (इन्स्ट्रुमेण्टल वैल्यूज़ ) 49

डा० सिंह का प्रस्तुत विस्तृत मूल्य-वर्गीकरण अपनी कुछ कमियों के कारण स्वीकार्य नहीं है । इस सूची में ऋणात्मक मूल्यों को स्थान दिया गया है जिसका मूल्य-रूप में अस्तित्व ही नहीं है । डा० हुकुम चन्द राजपाल के अनुसार- " जीवन-मूल्य तो वही स्वीकार्य हैं जो आत्मिक विकास में सहायक हैं ।" 50 ऋणात्मक मूल्य

विकास नहीं पतन के कारण होते हैं। तत्त्व की दृष्टि से किये गये मूल्य-विभाजन में परम / अन्तिम मूल्य ( ऐब्सोल्यूट वैल्यू ) को ही साध्यगत मूल्य (ऐब्सोल्यूट वैल्यू ) की संज्ञा प्रदान कर सूची में व्यर्थ मूल्य-संख्या बढ़ाई है। निमित्त मूल्य (इन्स्ट्रुमेण्टल वैल्यू ) को तत्त्व की दृष्टि से किये गये विभाजन में स्थान दिया गया है और उसका उल्लेख परिणाम की दृष्टि से किये गये विभाजन में साधनगत मूल्य (इन्स्ट्रुमेण्टल वैल्यू ) शीर्षक देकर कर दिया गया है। अतः यह मूल्य-वर्गीकरण अवैज्ञानिकता का सूचक है।

डा० मोहिनी शर्मा ने जैविकता को मूल्य-विभाजन का आधार बनाया है। उनके मतानुसार जीवन-मूल्य दो प्रकार के होते हैं—

1. जैविक मूल्य एवं
2. पराजैविक मूल्य।<sup>51</sup>

जीवन-मूल्यों के संदर्भ में जैविकता ही पराजैविकता की ओर अग्रसर होती है। इसलिए जैविक और पराजैविक जीवन-मूल्यों के मध्य कोई भेदक रेखा खींच पाना असम्भव है। जीवन-मूल्य मानवीय जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं। मनुष्य को यह सार्थकता जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मिलती है। इसलिए जीवन-मूल्यों का वर्गीकरण मानवीय जीवन के विविध क्षेत्रों के आधार पर किया जा सकता है। विभिन्न आधारों पर श्रेणीबद्ध जीवन-मूल्य मानव जीवन के किसी न किसी क्षेत्र से ही सम्बद्ध होते हैं। जीवन क्षेत्रों के आधार पर जीवन-मूल्यों का वर्गीकरण इस प्रकार हो सकता है -

1. वैयक्तिक मूल्य, 2. सामाजिक मूल्य, 3. राजनैतिक मूल्य, 4. आर्थिक मूल्य, 5. नैतिक मूल्य, 6. सांस्कृतिक मूल्य, 7. शैक्षणिक मूल्य, 8. वैज्ञानिक मूल्य, 9. सौन्दर्य परक मूल्य और 10. कलात्मक मूल्य

### जीवन मूल्य और साहित्य : अन्तःसम्बंध

" साहित्य, साहित्यकार का अनुभूत सत्य होता है।"<sup>52</sup> इस अनुभूत में साहित्यकार युगबोध की प्रक्रिया से गुजरता हुआ युग की अपेक्षाओं से साक्षात्कार करता है। इसलिए साहित्य में युगबोध और युग की अपेक्षाएं सन्निहित रहती हैं। युगबोध की सीमा में उपलब्ध जीवन-मूल्य आ जाते हैं। युग की अपेक्षाओं में मानवीय जीवन को पूर्णता प्रदान करने वाले जीवनादर्श आ जाते हैं। जब साहित्य में युगबोध का प्रश्न उठाया

जाता है तब इसका अर्थ साहित्यकार द्वारा युगीन अथवा उपलब्ध जीवन-मूल्यों को देखकर या उनके आधार पर रचना करने से होता है और जब साहित्य में प्रासंगिकता ढूंढी जाती है तो इसका अभिप्राय साहित्यकार द्वारा रचना में अपेक्षित जीवन-मूल्यों के आधार पर जहां नयी रचनाओं का सृजन होता है वहां आवश्यकतानुसार रचनाओं में नये जीवन-मूल्यों की स्थापना भी होती है । वह ( साहित्यकार ) जीवन का मूल्य द्रष्टा और मूल्य स्रष्टा ; दोनों रूपों में साक्षात्कार करता है ।<sup>53</sup> इसीलिए साहित्य समाज का दर्पण भी है और पथ-प्रदर्शक भी । मूल्य द्रष्टा के रूप में, " अपने युग में मानव-मूल्यों का विघटन होते देखकर अथवा धन और भोग के लिए अनेक जनों में किन्हीं प्रिय मूल्यों का ह्रास देखकर ही शेक्सपियर ने अपने महान दुःखान्त नाटक रचे ।"<sup>54</sup> मूल्य स्रष्टा के रूप में " तुलसी दास ने युग की आवश्यकताओं को समझकर अपने "मानस" में मर्यादा पुरुषोत्तम राम का आदर्श रूप चित्रित किया है ।"<sup>55</sup> उन्होंने अपनी रचना में समाज की सृष्टि की । आचार्य हजारी प्रसाद के शब्दों में - " आज तीन सौ वर्ष बाद इस विषय में कोई सन्देह नहीं रह सकता कि उन्होंने भावी समाज की सृष्टि सचमुच की थी । आज का उत्तर भारत तुलसीदास का रचा हुआ है वही उसके मेरुदण्ड हैं ।"<sup>56</sup>

साहित्य में नियोजित जीवन-मूल्यों का रूप वह नहीं होता जो दर्शनादि ज्ञानात्मक अनुशासनों में होता है । साहित्यकार जीवन-मूल्यों को सैद्धान्तिक घेरे से निकाल कर मानवीय जीवन की व्यावहारिकता में प्रस्तुत करता है । साहित्य ही जीवन-मूल्यों को जनोन्मुखी बनाता है । दार्शनिकों एवं चिन्तकों का जीवन-दर्शन यथातथ्य रूप में दुरुह होने के कारण जन-जीवन को अपेक्षाकृत कम प्रभावित करता है । कोई भी जीवन-दर्शन साहित्यकार की संवेदना और कलात्मकता के स्पर्श से अधिक प्रभावकारी और ज्ञेय बनता है । काव्य के प्रयोजनों में एक प्रयोजन कान्ता सम्मत उपदेश देना होता है । इस प्रयोजन का अभिप्राय साहित्य में जीवन-मूल्यों की कान्ता सम्मत ढंग से होने वाली प्रस्तुति से ही होता है । दुरुह जीवन-दर्शन की प्रभावोत्पादक साहित्यिक प्रस्तुति के संबंध में डा० मोहिनी शर्मा ने लिखा है कि- " विभिन्न विचारकों एवं चिन्तकों का जीवन-दर्शन जब साहित्यकार द्वारा कलात्मकता तथा रमणीयता के साथ जीवन यथार्थ से संयुक्त होकर अभिव्यंजित होता है तभी जन-मानस के चिन्तन को अपेक्षित नवीन दिशा प्रदान कर जीवन-मूल्य के संक्रमण का आधार बनाता है ।"<sup>57</sup> यह सत्य है कि फ्रायड, युंग एवं एडलर के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों की कान्ता सम्मत साहित्यिक प्रस्तुति ने

जीवन-मूल्यों के सक्रमण में उल्लेखनीय भूमिका निभाई है ।

डा० वैजनाथ सिंहल ने मूल्यों के प्रति साहित्यकार के दृष्टिकोण के संबंध में लिखा है कि - " साहित्यकार का मूल्यों के प्रति दृष्टिकोण तटस्थ एवं निर्वैयक्तिक होता है ।"<sup>58</sup> इस मत से विनम्र असहर्मात रखते हुए मैं पूछता हूँ कि साहित्यकार जो मूल्य-द्रष्टा भी है और मूल्य-स्रष्टा भी, वह मूल्यों से तटस्थ कैसे रह सकता है ? ऐसा नहीं है । चाहे साहित्य में समकालीन जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति हो या साहित्य में नवीन जीवन-मूल्यों के नियामक उत्पादनों की प्रस्तुति हो, साहित्यकार दोनों ही स्थितियों में जीवन-मूल्यों के प्रति सचेत रहता है । यदि ऐसा न होता तो साहित्य यथार्थ लोक से दूर कल्पनाओं की वस्तु हो जाता । " शैक्सपियर की विश्वजनीनता का यही कारण है कि वह निरपेक्ष रहकर कल्पना-कौशल नहीं दिखलाते वरन् उन मूल्यों के प्रति हमारी सहानुभूति जागृत करते हैं जिनके बिना मनुष्य अपना मनुष्योचित जीवन पा नहीं सकता ।"<sup>59</sup> इतना ही नहीं " शैक्सपियर समाज के नैतिक संघर्ष में तटस्थ न होकर विश्व जनीन मूल्यों का पक्ष लेते हैं ।"<sup>60</sup>

साहित्य का महत्व केवल इसीलिए नहीं है कि उसमें जीवन-मूल्यों की अभिव्यंजना और उनकी स्थापना होती है, बल्कि उसका महत्व इस दृष्टि से भी है कि वह संचित जीवन-मूल्यों की रक्षा करता है । सचेत साहित्यकारों के सामने " पूरी संस्कृति के मूल्यात्मक विकास का दायित्व होता है ।"<sup>61</sup> जिसके निर्वाह के लिए " वे अबतक के संचित मानव-मूल्यों की रक्षा करते हैं ; इसी मार्ग पर चलकर वे इन मूल्यों को और भी समृद्ध करके अगले युगों को एक महान विरासत के रूप में छोड़ जायेंगे ।"<sup>62</sup>

वस्तुतः जीवन-मूल्य और साहित्य का संबंध समन्वयात्मक है । जीवन-मूल्य साहित्य को और साहित्य जीवन-मूल्य को प्रभावित करता है ।



सन्दर्भ :

1. नगेन्द्रनाथ बसु (संपादक), हिन्दी विश्वकोष, (अष्टादश भाग), बी.आर. पब्लिशिंग कारपोरेशन दिल्ली, संस्करण सन् 1986 ई०, पृ० 238-39.
2. सुमित्रा नन्दन पन्त, आलोचना पत्रिका, अंक - जनवरी सन् 1954 ई०, पृ० 72.
3. आई०ए० एक्सट्रांस, आलोचना पत्रिका, अंक - जनवरी सन् 1954 ई०, पृ० 69.
4. गिरजा कुमार माथुर, उद्धृत - शशि सहगल, नयी कविता में मूल्य-बोध, अभिनव प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण सन् 1976, ई० पृ० 15.
5. सुमित्रा नन्दन पन्त, आलोचना पत्रिका, अंक - जनवरी सन् 1954 ई०, पृ० 72.
6. सच्चिदानंद सिन्हा, बहुमत पत्रिका, अंक - 3 फरवरी से जुलाई सन् 1993 ई०, पृ० 27.
7. डॉ० अरुणा गुप्ता, छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, संस्करण द्वितीय सन् 1989 ई०, पृ० 22.
9. हुकुम चन्द राजपाल, आधुनिक काव्य में जीवन-मूल्य, भारतीय संस्कृत भवन जालन्धर शहर, संस्करण प्रथम सन् 1970 ई०, पृ० 17.
10. डॉ० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, संस्करण प्रथम सन् 1957 ई०, पृ० 10 (प्रस्तावना).
11. डॉ० बैजनाथ सिंहल, नयी कविता : मूल्य-मीमांसा, मंथन पब्लिकेशन्स रोहतक, संस्करण प्रथम, सन् 1985 ई०, पृ० 116.
12. हेमन्त कुमार पानेरी, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य-संक्रमण, संधी प्रकाशन जयपुर, संस्करण प्रथम सन् 1974 ई०, पृ० 22.
13. जीवन महता, राजनीतिक चिन्तन का इतिहास, साहित्य भवन आगरा, संस्करण तृतीय सन् 1988 ई०, दृष्टव्य हैं - हाब्स, लॉक और रूसो के राजनीतिक विचारों से सम्बद्ध अध्याय.
14. मैकडूगल, उद्धृत - घनश्यामदास रस्तोगी, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, टाटा मैकगो-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड नयी दिल्ली, संस्करण सन् 1980 ई०, पृ० 155.

15. क्रोसिनी, रेमण्ड जे० (सम्पादक) कॉन्साइज ऐन्साइक्लोपीडिया ऑफ साइक्लॉजी, जोन विली न्यूयाके, संस्करण सन् 1987 ई०, पृ० 96.
16. घनश्याम दास रस्तोगी, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, पृ० 252.
17. बी० कुप्पुस्वामी, समाज मनोविज्ञान - एक परिचय, हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी चण्डीगढ़, संस्करण प्रथम सन् 1972 ई०, पृ० 191.
18. एडम स्मिथ, उद्धृत - वही, पृ० 88.
19. बी० कुप्पुस्वामी, वही, पृ० 89.
20. कॉन्साइज ऐन्साइक्लोपीडिया ऑफ साइक्लॉजी, पृ० 366.
21. प्रो० रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, उद्धृत - डॉ० मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, साहित्यागार जयपुर, संस्करण सन् 1986 ई०, पृ० 18.
22. जे०ए० सिम्पसन और ई०एस०सी० वीनर, द ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी, वॉल्यूम 7, सेकन्ड एडिशन, क्लेरन्डन प्रेस ऑक्सफोर्ड, पृ० 1099.
23. रामचन्द्र वर्मा (सम्पादक), मानक हिन्दी कोश - तीसरा खण्ड, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संस्करण प्रथम, पृ० 557.
24. धीरेन्द्र वर्मा (सम्पादक), हिन्दी विश्वकोश - खण्ड एक, नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, संस्करण प्रथम सन् 1960 ई०, पृ० 358.
25. वही, पृ० 361.
26. कॉन्साइज ऐन्साइक्लोपीडिया ऑफ साइक्लॉजी, पृ० 96.
27. उद्धृत घनश्याम दास रस्तोगी, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, पृ० 159.
28. श्याम सुन्दर दास (सम्पादक) हिन्दी शब्द सागर - प्रथम भाग, काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, संस्करण सन् 1965 ई०, पृ० 439.
29. रामचन्द्र वर्मा (सम्पादक), मानक हिन्दी कोश - दूसरा खण्ड, पृ० 519.
30. उद्धृत - डॉ० मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, पृ० 20.
31. रामचन्द्र वर्मा (सम्पादक), मानक हिन्दी कोश - पहला खण्ड, पृ० 508.
32. उद्धृत - डॉ० मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, पृ० 27.

33. उद्धृत - शशि सहगल, नयी कविता और मूल्य बाध, पृ० 123.
34. हजारी प्रसाद द्विवेदी, अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मंडल नयी दिल्ली, संस्करण - 3, सन् 1952 ई०, पृ० 64.
35. डॉ० रामरतन भटनागर, वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास, हिन्दी संसार दिल्ली, संस्करण प्रथम सन् 1962 ई०, पृ० 32.
36. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, मूल्य-मीमांसा, पृ० 71.
37. उद्धृत - डॉ० मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, पृ० 28.
38. श्यामसुन्दर दास (सम्पादक) हिन्दी शब्द सागर (चतुर्थे भाग), काशी नागरी प्रचारिणी सभा, संस्करण सन् 1968 ई०, पृ० 2226.
39. डॉ० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 10 (प्रस्तावना)
40. रामचन्द्र वमो (सम्पादक), मानक हिन्दी कोश (तीसरा खण्ड), हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम संस्करण, पृ० 313.
41. डॉ० मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, पृ० 30.
42. डॉ० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 368.
43. फूलदेव सहाय वमो (सम्पादक), हिन्दी विश्वकोश (खण्ड-10) नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, संस्करण प्रथम, सन् 1968 ई०, पृ० 467.
44. डॉ० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 217.
45. वही, पृ० 233.
46. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, मूल्य-मीमांसा, पृ० 254.
47. डॉ० देवराज, संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 10 (प्रस्तावना).
48. हुकुम चन्द राजपाल, आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, पृ० 70.
49. डॉ० भरत कुमार सिंह, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन-मूल्य, शब्द शक्ति प्रकाशन कानपुर, संस्करण प्रथम, सन् 1993 ई०, पृ० 60-61.
50. हुकुम चन्द राजपाल, आधुनिक काव्य में नवीन जीवन-मूल्य, पृ० 74.

51. डॉ० मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, पृ० 35.
52. डॉ० बेजनाथ सिंहल, नयी कविता : मूल्य-मीमांसा, पृ० 111.
53. वही.
54. डॉ० रामविलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, किताब महल इलाहाबाद, प्रथम आवृत्ति, सन् 1983, पृ० 101.
55. डॉ० मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, पृ० 43.
56. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, आठवीं आवृत्ति, सन् 1969 ई०, पृ० 103.
57. डॉ० मोहिनी शर्मा, हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, पृ० 46.
58. डॉ० बेजनाथ सिंहल, नयी कविता : मूल्य-मीमांसा, पृ० 111.
59. डॉ० रामविलास शर्मा, आस्था और सौन्दर्य, पृ० 100.
60. वही, पृ० 102.
61. डॉ० बैजनाथ सिंहल, नयी कविता : मूल्य-मीमांसा, पृ० 110.
62. डॉ० रामविलास शर्मा, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस, संस्करण प्रथम, सन् 1956 ई०, पृ० 36.

## अध्याय -- तीन

## संशय की एक रात का समकालीन परिवेश

### समकालीन परिवेश

साहित्यकार अपने परिवेश से साक्षात्कार करने के पश्चात् ही रचनाधर्मिता के महत्वपूर्ण दायित्व को निभाने में सक्षम होता है। उसका अनुभूत यथार्थ रचना का रूप धारण कर के युगों-युगों तक अपनी जीवन्तता बनाये रखता है। रचनाधर्म तमाम युगीन संदर्भों को एक रचना में गुंफित कर के कालजयी बन जाता है। कोई भी महान् रचना अपने समकालीन परिवेश से दूर नहीं जा सकती।

श्री नरेश मेहता ने "संशय की एक रात" सन् 1959 ई० में प्रयाग आने पर प्रारम्भ की और इसकी इति 28 अप्रैल सन् 1962 ई० को इलाहाबाद में हुई।<sup>1</sup> ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो "संशय की एक रात" का सृजन आधुनिक भारतीय इतिहास के नेहरू युग में हुआ। स्वतंत्रता की प्राप्ति भारतीय समाज के लिए एक अन्यतम उपलब्धि थी। स्वतंत्रता से न केवल हमारे समाज की स्थितियों में परिवर्तन हुआ है बल्कि एक नई मानसिकता का उद्भव भी हुआ है। जन साधारण ने नये ढंग से जीना और सोचना आरम्भ किया। जन-जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। वस्तुतः संशय की एक रात का समकालीन परिवेश राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। समीक्ष्य कृति के सही विवेचन के लिए इस काल को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है। अतः सुविधा की दृष्टि से समीक्ष्य कृतिके समकालीन परिवेश को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है।

### राजनीतिक परिवेश

#### 1. भारत विभाजन और शरणार्थी समस्या

15 अगस्त सन् 1947 ई० को स्वतंत्रता की प्राप्ति के साथ भारत का विभाजन हुआ। विभाजन की घोषणा होते ही लोगों में एक कौमी पागलपन आ गया जिसकी परिणति साम्प्रदायिक दंगों, लूट-पाट, बलात्कार

रक्तपात, आगज़नी और अन्य प्रकार के अमानवीय कृत्यों में हुई। वह गांधी जो जीवन भर साम्प्रदायिक सौहार्द की बात करते रहे, साम्प्रदायिकता के शिकार हुए। विभाजन के फलस्वरूप हुए नरसंहार ने समस्त मानवीय मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। जन-जीवन में भय और अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी।

साम्प्रदायिक पागलपन और क्षेत्रवादिता की आग से बचने के लिए लाखों लोगों को सरहद के आरपार होना पड़ा। विभाजन की घोषणा से पूर्व पीड़ित जनता के स्थानान्तरण की कोई उपयुक्त व्यवस्था नहीं की गयी। फलस्वरूप स्वाधीन भारत के समक्ष अचानक शरणार्थियों के विस्थापन की समस्या खड़ी हो गयी। विभाजन रेखा के दोनों ओर सैनिकों की देख-रेख में जनता के सुरक्षित स्थानान्तरण की जो व्यवस्था हुई थी वह पर्याप्त संतोषजनक नहीं थी।

पाकिस्तान से आए शरणार्थियों की समस्या स्वाधीन भारत के लिए संसार के इतिहास की सबसे बड़ी शरणार्थी समस्या कही जा सकती है।<sup>2</sup> केशव गोपाल द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों के अनुसार शरणार्थियों की कुल संख्या 47, 79, 278 थी।<sup>3</sup> केन्द्रीय पुनः संस्थापन मंत्रालय ने शरणार्थियों के लिए दिल्ली, नयी दिल्ली और उसके आस-पास बीस बस्तियां बसाईं, जिनमें लग-भग 40,000 निवास स्थान थे और केवल दो लाख व्यक्तियों के रहने की व्यवस्था की गयी थी। शरणार्थियों को सरकार द्वारा उपलब्ध कराई गयी यह आवासीय सुविधा ना काफ़ी थी। वस्तुतः अधिकांश शरणार्थियों को खानाबदोश की ज़िन्दगी जीने के लिए बाध्य होना पड़ा।

## 2. गणराज्य की स्थापना और नये राजनीतिक मूल्यों का स्थापन

स्वतंत्र भारत के संविधान में भारत को प्रभुत्व सम्पन्न, पंथ निरपेक्ष और लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है। 26 जनवरी सन् 1950 ई0 को हमारे देश में जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता की सरकार का सिद्धान्त लागू हुआ। सदियों से बाह्य शक्तियों द्वारा शासित भारतीय जन-मानस के लिए यह एक सुखद अनुभूति का दिन था।

भारतीय संविधान के निर्माताओं ने शोषणमुक्त समाज की स्थापना के लिए संविधान में नागरिकों के मूल अधिकारों और राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों को प्रमुख स्थान दिया। जाति, धर्म, कुल, वंश, रंग आदि के आधार पर होने वाला पारस्परिक भेद-भाव भारतीय समाज से सिद्धान्ततः दूर हुआ। जनता के प्रति शासक

की जवाबदेही से जनता में आत्मबल और स्वाभिमान का संचार हुआ । भारतीय संविधान न दण्ड में व्याप्त आतंक, शोषण, पक्षपात और भय को समूल समाप्त किया है और शोषण विहीनता, निर्भयता, सौहार्द और बन्धुत्व की भावना का सूत्रपात किया है । स्वतंत्र भारत में सामन्ती और पूंजीवादी मानसिकता को समाप्त करके नवीन लोक कल्याणकारी जीवन-मूल्यों को विकसित करने का श्रेय हमारे संविधान को ही प्राप्त है ।

### 3. चुनाव की व्यवस्था और उसके परिणाम

संविधान में भारत को एक लोकतंत्रात्मक राज्य माना गया है । भारतीय लोकतंत्र संसदीय पद्धति पर आधारित है । इस शासन पद्धति का आधार चुनाव होता है । चुनाव की प्रक्रिया से जनता में निर्णय करने की सलाहियत विकसित होती है और उसका स्वाभिमान भी बना रहता है । चुनाव तंत्र सरकार और जनता के मध्य सम्पर्क-सूत्र होता है । चुनाव से समस्त सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्था प्रभावित होती है जिसका असर जीवन-मूल्यों पर पड़ता है ।

हमारे देश में संसदीय पद्धति के लोकतंत्र का पहला सफल परीक्षण सन् 1952 ई० में हुए पहले आम चुनाव में हुआ । दूसरा चुनाव सन् 1957 ई० में और तीसरा चुनाव सन् 1962 ई० में सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ । केन्द्रीय सरकार के गठन के लिए लोकसभा और प्रान्तीय सरकारों के गठन के लिए विधान सभाओं के चुनाव एक साथ ही सम्पन्न हुए । इन चुनावों में भाग लेने के लिए अलग-अलग नीतियों के आधार पर अनेकों राजनैतिक दल अस्तित्व में आए । इन दलों ने अपने-अपने घोषणापत्रों के माध्यम से जनता में अपना विश्वास जगाने का प्रयास किया । चुनावी वातावरण ने जन-साधारण की राजनीतिक चेतना को जागृत किया ।

कांग्रेस ने स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान देश की हर सम्भव सेवा की थी । इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनता इस दल से भावात्मक रूप से जुड़ गयी थी । वस्तुतः इस दल को मतदाताओं का पूरा-पूरा सहयोग मिला । उक्त तीनों आम चुनावों में अनेक विरोधी दलों के होते हुए भी कांग्रेस ही केन्द्र और अधिकांश प्रान्तों में प्रतिष्ठित हुई । लेकिन धीरे-धीरे इस दल का चरित्र बदलने लगा । सत्ताधारी नेता प्रशासन के मद में राष्ट्र हित के रचनात्मक कार्यों से विमुख होते गये । फलस्वरूप जनता में इसका विश्वास कम हुआ । तृतीय और चतुर्थ लोक सभा के चुनावों में कांग्रेस को अपेक्षाकृत कम सीट्स प्राप्त हुई ।<sup>4</sup> कम्युनिस्ट पार्टी, जिसका



जनाधार किसान और मजदूर थे, की स्थिति प्रारम्भिक तीनों चुनावों में क्रमशः सुधरी।<sup>5</sup> इससे स्पष्ट होता है कि मतदाता जागरूक हुए और उन्होंने अपने मताधिकार का प्रयोग सोच-समझकर किया।

#### 4 प्रादेशिक विद्रोह और सीमा सुरक्षा की समस्या

आज़ादी मिलने के बाद भारत को प्रादेशिक विद्रोह और सीमा सुरक्षा की एक गंभीर समस्या का सामना करना पड़ा। एक ओर प्रान्तीय स्वायत्तता के लिए भारतीय नागरिक ही अपनी सरकार से विद्रोह कर रहे थे और दूसरी ओर भारत के पड़ोसी देश भारत की सीमा पर आधिपत्य स्थापित करने की नीयत से षड़यंत्र रच रहे थे। तत्कालीन भारत सरकार ने इस क्षेत्र में जिन समस्याओं का सामना किया उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :-

##### क. नागा आन्दोलन

ईसाई मिशनरियों द्वारा सुविचारित प्रचार-प्रभाव के फलस्वरूप नागाओं के मन में यह बात गहराई से प्रवेश कर गयी कि उनका भारत से पृथक् एक अलग अस्तित्व है और भारत सरकार के अधीन रहना अपनी पहचान खो देने जैसा है। इस विचारधारा के निरन्तर गहराते प्रभाव ने नागाओं की मानसिकता को स्वतंत्र नागालैण्ड के लिए प्रेरित किया और उन्हें इस मांग को लेकर भारत सरकार के विरुद्ध विद्रोह के लिए आमादा कर दिया। नागाओं की यह विद्रोह भावना फ़िजो का नेतृत्व पाकर एक सशक्त आन्दोलन के रूप में उभरी। फ़िजो सन् 1951 ई0 में एक प्रतिनिधि मण्डल के साथ नेहरू से दिल्ली में मिला। नेहरू ने फ़िजो की नागालैण्ड के पार्थक्य की मांग को नामंजूर कर दिया। इससे नागा लोग और अधिक भड़क उठे। फ़िजो ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि -"भारत नागाओं की भावनाओं की इज्जत नहीं करता और उन्हें कुचलना चाहता है। पर मैं आपसे कहता हूँ कि हम आज़ाद होकर ही रहेंगे।"<sup>6</sup> इस तरह नागाओं का आन्दोलन निरन्तर तीव्र होता गया। नागाओं ने बर्बरता का परिचय देते हुए तोड़-फोड़, हत्या, आगज़नी जैसी विद्रोहपूर्ण एवं आतंकवादी घटनाओं को तीव्र कर दिया। इस स्थिति को दृष्टि में रखते हुए अगस्त 1960 ई0 में भारत सरकार ने उनके सोलह सूत्री प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। फलस्वरूप तत्कालीन राष्ट्रपति राधाकृष्णन के हाथों नागालैण्ड राज्य का विधिवत् उद्घाटन हुआ।

##### ख. गोआ की समस्या

भारत स्वाधीन हो गया था लेकिन भारत का अंग गोआ पुर्तगाल के आधिपत्य में ही रहा। पुर्तगाली

तानाशाह सालजार और भारत सरकार के मध्य विवाद की स्थिति निरन्तर तीखी होती चली गयी । पुर्तगाली आधिपत्य से गोआ को मुक्त कराने का प्रश्न बहुत जटिल था । युद्ध की स्थिति से बचने के लिए सत्याग्रह का मार्ग अपनाना ही भारतीयों को अपेक्षित जान पड़ा । पुर्तगाली तानाशाह सालजार ने भारतीयों के सत्याग्रह को अर्थहीन समझते हुए उसका उत्तर हिंसा से दिया और निहत्थे सत्याग्रहियों पर गोली चलवा दी । " 15 अगस्त सन् 1955 ई0 को जब सम्पूर्ण देश भारतीय स्वतंत्रता की आठवीं वर्षगांठ मना रहा था, गोआ की सरहद पर निहत्थे भारतीय देशभक्तों को अत्यन्त नृशंसता पूर्वक गोली का निशाना बनाया जा रहा था ।"<sup>7</sup> इस गोली काण्ड में 22 सत्याग्रही शहीद हुए । पुर्तगालियों की इस तानाशाही से गोआ स्वतंत्रता आन्दोलन और अधिक सुनियोजित और सुदृढ़ हुआ । अन्ततः इस आन्दोलन में भारतीयों को सफलता मिली । सन् 1961 ई0 में गोआ स्वाधीन हो गया और उसे सन् 1962 ई0 में केन्द्र शासित प्रदेश का दर्जा प्रदान कर दिया गया ।

### ग. कश्मीर की समस्या

जम्मू और काश्मीर भारत का अंग है । अक्टूबर 1947 ई0 में काश्मीर के महाराजके अनुरोध पर जम्मू और काश्मीर की रियासत को भारत का अंग स्वीकार कर लिया गया था । किन्तु, पाकिस्तान आरम्भ से ही जम्मू और काश्मीर को अपना भाग समझता रहा है । इसीलिए पाकिस्तान के संविधान में भी जम्मू और कश्मीर को पाकिस्तान का अंग स्वीकार किया गया है ।

एक प्रान्त पर दो राज्यों के संवैधानिक अधिकार ने दोनों राज्यों के संबंधों में कड़वाहट भर दी । पाकिस्तान ने आरम्भ से ही जम्मू और कश्मीर को अपनी सीमा में कर लेने के लिए बहुत प्रयास किये । वस्तुतः कश्मीर के मामले में यू0एन0ओ0 की स्थिति एक बिचौलिए की मान लेने के कारण ही ऐसा हुआ । पाकिस्तान का पक्ष यह था कि कश्मीरवासियों को यह मतधिकार होना चाहिए कि वे भारत अथवा पाकिस्तान के पक्ष में अपना मतदान कर सकें । भारत इस प्रकार के किसी मतदान के पक्ष में कभी नहीं था । फलस्वरूप पाकिस्तान ने पश्चिमी देशों का सहारा लिया । छुट-पुट घटनाएं आये दिन होती रहती थीं । कोई ऐसा महीना नहीं जाता था जिसमें उसकी सेना, पुलिस या उसके नागरिक भारत की सीमा में घुसकर दो-चार बार लूट-मार न कर जाते हों ।<sup>8</sup> निरन्तर बढ़ती पारस्परिक शत्रुता ने दो युद्ध ऐसे करा दिये जिसमें दोनों ही देशों की हानि

हुई । पाकिस्तान अपने अथक प्रयासों के बावजूद जम्मू और कश्मीर पर अपना आधिपत्य स्थापित नहीं कर सका, किन्तु इससे स्थिति दोनों देशों के लिए तनावपूर्ण बनी रही ।

#### घ. भारत और चीन का सीमा-विवाद

भारत और चीन का सीमा-विवाद स्वातंत्र्योत्तर भारत का एक अत्यंत दुःखद अध्याय रहा है । भारत ने चीन को अपना मित्र समझा, किन्तु चीन ने भारत के साथ विश्वासघात किया । चीन की अधिकारवांक्षा के सामने भारत का मित्रवत् व्यवहार महत्वहीन सिद्ध हुआ । चीन ने कश्मीर और तिब्बत से लगे भारत के क्षेत्र को अपना बताकर भारतीय नेताओं के सामने एक समस्या खड़ी करके उन्हें सोचने के लिए बाध्य कर दिया । भारत सरकार के सामने आन्तरिक उलझनें ही इतनी थीं कि वह किसी अन्य बड़ी उलझन में पड़ने की स्थिति में नहीं रह गयी थी । इसलिए सन् 1961 ई० में सीमा के संबंध में हुई भारत और चीन के अफसरों की एक कान्फ्रेंस में चीनियों ने सीमा के जिस क्षेत्र को अपना बताया, भारत ने उसे ही अस्थायी रूप से स्वीकार कर लिया । भारत किसी भी स्थिति में चीन के साथ युद्ध करना नहीं चाहता था । वह सीमा-विवाद को शांतिपूर्वक सुलझाने के पक्ष में था । लेकिन चीन ने 20 अक्टूबर सन् 1962 ई० में भारत पर आक्रमण कर दिया । इस युद्ध में भारत को सन्धि करनी पड़ी और चीन ने अपना इरादा पूरा कर लिया ।

इस युद्ध में भारत की बहुत बड़ी हानि हुई । भारतीय जन-जीवन हिल कर रह गया । ऐसी स्थिति में भारत सरकार का ध्यान विकासात्मक कार्यों की अपेक्षा सुरक्षात्मक कार्यों की ओर जाना स्वाभाविक था । वस्तुतः सरकार ने सुरक्षात्मक कार्यों पर अधिक व्यय किया । मेजर सीताराम जौहरी के शब्दों में - " सन् 1959 ई० से सन् 1963 ई० तक भारत में सीमा-सुरक्षा संबंधी जितना कार्य हुआ उस कार्य को अन्य देशों को 16 सालों में भी पूरा कर पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता ।"<sup>9</sup>

#### च. भारत का पंचशील सिद्धान्त

शान्तिप्रिय महात्मा गांधी जी ने नेहरू को अपना उत्तराधिकारी बनाया था । नेहरू जी शान्ति के अग्रदूत बनकर विश्व के सामने आये । उन्होंने विश्व शान्ति हेतु पंचशील सिद्धान्त विश्व के सम्मुख रखा । साम्राज्यवादी और समाजवादी शक्तियों के मध्य -" शीत युद्ध की विधिवत् घोषणा 5 मार्च 1946 ई० को अमरीका के पुलटन

शहर में विंसटन चर्चिल द्वारा दिये गये प्रसिद्ध भाषण "10" से हो गयी थी । शीत युद्धीय वातावरण में सन् 1950 ई० के आस-पास अमरीका और रूस के संबंधों में काफी कटुता लक्षित होने लगी । दो सर्वश्रेष्ठ पूंजीवादी और समाजवादी राष्ट्रों के द्वन्द्व में भारत ने तटस्थता की नीति अपनाई ।

इसी समय अमरीकी साम्राज्यवादियों ने सोवियत संघ और पूर्वी योरोप के समाजवादी देशों के विरुद्ध युद्ध के लिए साम्राज्यवादी और पूंजीवादी देशों की सैनिक शक्ति को संगठित करने के विचार से "उत्तर एटलांटिक संधि संगठन" (नाटो) किया । इसके बाद अमरीकी साम्राज्यवादियों ने दक्षिण-पूर्व एशिया को अपने वश में करने के लिए "दक्षिण-पूर्व एशिया संधि संगठन" (सियाटो) और पूर्व-दक्षिण यूरोप तथा पश्चिम एशिया को वश में करने के लिए "सेंटो" की स्थापना की । वस्तुतः साम्राज्यवादियों ने सारी दुनिया में अपने फौजी अड्डों का जाल बिछा दिया । नेहरू ने इन संधियों को तृतीय विश्व-युद्ध की स्थिति का जनक बताया और उनकी भर्त्सना भी की ।

25 जून सन् 1950 ई० को कोरिया का युद्ध छिड़ जाने पर साम्राज्यवादी शक्तियों के प्रति शान्तिप्रिय देशों का असंतोष भड़क उठा । इसी दौर में अमेरिका तथा रूस उद्‌जन बमों के निर्माण की घोषणा कर चुके थे । सन् 1954 ई० में अमेरिका और पाकिस्तान की सैनिक संधि हुई । इससे तृतीय विश्व-युद्ध की सम्भावना और बढ़ गयी । वियतनाम ने फ्रान्सीसी उपनिवेशवादियों को देश से बाहर निकाल देने के उद्‌देश्य से युद्ध छेड़ दिया ।

26 अप्रैल 1954 ई० को जिनेवा में चार बड़े राष्ट्रों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन प्रारम्भ हुआ । इसी समय भारत, पाकिस्तान, बर्मा, लंका और इन्डोनेशिया ने कोलम्बो सम्मेलन किया । इस सम्मेलन में तटस्थता की नीति का भरपूर समर्थन और साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का विरोध किया गया । इस सम्मेलन के प्रभाव स्वरूप वियतनाम में युद्ध विराम हो गया । विश्व के शान्तिकामी राज्य अपनी जनवादिता के आधार पर शान्ति स्थापना के प्रयासों में जुटे रहे जिसका परिणाम "पंचशील" के रूप में सामने आया । 18 अप्रैल सन् 1955 ई० में बंडुंग में तीस एशियाई-अफ्रीकी देशों का एक बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ जिसमें पंचशील की सराहना हुई और उसे सबने स्वीकार किया । इस दौर में जनवादी और शान्तिकामी राष्ट्रों के सद्‌प्रयासों से साम्राज्यवादी शक्तियां दुर्बल हुई और गुलामी से मुक्ति पाने की लालसा विकसित हुई । परिणाम स्वरूप इण्डोचाइना (1955), मोरक्को (1956), घाना

(1957), मलाया (1957), ट्यूनीशिय (1957) आदि राष्ट्र स्वतंत्र हुए ।

### आर्थिक परिवेश

#### 1. मिश्रित अर्थ व्यवस्था

आलोच्य काल की अर्थनीति में मिश्रित अर्थ-व्यवस्था को ग्रहण किया गया था । उद्योगों को निजी और सरकारी दो क्षेत्रों में बांट दिया गया । सरकार ने उत्पादनों के साधनों पर एक साथ सरकारी और निजी स्वामित्व और नियन्त्रण का कानून बनाया । इसी को मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का नाम दिया गया ।

वामपंथी रुझान के लोगों ने इस अर्थ-व्यवस्था को जनहित के विरुद्ध माना और इसकी आलोचना की । उनके अनुसार उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व एवं नियंत्रण के प्रावधान में सरकार की पूंजीवादी मनोवृत्ति सन्निहित थी । उद्योगों के निजी और सरकारी क्षेत्रों के विभाजन पर यह आरोप लगाया गया कि अधिक लाभ देने वाली उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन निजी क्षेत्र को सौंप दिया गया और अल्प लाभ वाले उत्पादन सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत रखे गये । जबकि प्रथम पंचवर्षीय योजना में अर्थ-व्यवस्था का निजी उद्योग क्षेत्र इस विश्वास के साथ निश्चित किया गया था कि एक सुआयोजित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत निजी क्षेत्र को भी कायम रखना सम्भव है । कलकत्ता में आयोजित एसोसिएशन चैम्बर्स आफ़ कामर्स की वार्षिक बैठक में वित्त मंत्री श्री सी० डी० देशमुख ने इसी विश्वास के साथ निजी व्यापार क्षेत्र की वकालत करते हुए कहा था कि - " आयोजित अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत निजी व्यापार क्षेत्र को अपने लिए एक नवीन अभिनय की कल्पना करनी होगी और देश-हित के लिए जो व्यक्तिगत हितों से ऊपर है, अनुशासन की एक नवीन नियम-व्यवस्था स्वीकार करनी होगी । अन्य किसी व्यापार की ही भांति निजी व्यापार क्षेत्र भी उसी सीमा तक अपने को न्यायोचित सिद्ध कर सकेगा जिस सीमा तक कि वह जनता के भले में सहायक सिद्ध होगा ।"<sup>11</sup>

#### 2. योजना बद्ध विकास

अंग्रेज़ शासकों के द्वारा भारतीय सम्पत्ति विदेश ले जाने<sup>12</sup> और स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ हुए भारत-विभाजन से हुई छिन्न-भिन्न आर्थिक व्यवस्था<sup>13</sup> में श्री नेहरू जी ने देश की बागडोर संभाल ली थी ।

एक ओर भारतीय सरकार के सामने इस आर्थिक विपन्नता से उबरने का जटिल प्रश्न था और दूसरी

और " सन् 1928 ई0 के पश्चात् सर्वे प्रथम रूस में कार्यान्वित पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता के विश्व-व्यापी प्रभाव से राष्ट्रीय समाजवादी लक्ष्यों की आपूर्ति, सर्वांगीण विकास और पूंजीवादी दोषों के मार्जन का उत्साह सर्वत्र फैल गया था ।"<sup>14</sup> नेहरू जी ने इससे प्रेरणा लेकर पंचवर्षीय योजना की प्रणाली अपनाई । मार्च सन् 1950 ई0 में भारत सरकार द्वारा प्रधान मंत्री नेहरू जी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय योजना आयोग की नियुक्ति की गई और अप्रैल सन् 1951 ई0 से प्रथम पंचवर्षीय योजना के रूप में नियोजित आर्थिक विकास का शुभारम्भ हुआ । प्रथम योजना विकास की बुनियाद पक्की करने की दृष्टि से तैयार की गयी थी । यह योजना बड़ी सावधानी से तैयार की गयी थी । इसलिए प्रथम योजना अपने उद्देश्य में सफल रही ।" 1952 और 1954 के बीच भारत ने जिस रफ़्तार से आर्थिक प्रगति की, उस रफ़्तार से संसार के अन्य किसी देश ने नहीं की ।<sup>15</sup> इस योजना के दौर में प्रति व्यक्ति आय 10.5 प्रतिशत बढ़ी और राष्ट्रीय आय में 18.4 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई । इस योजना में कृषि, पशुपालन, उद्यान, वन, मत्स्य सहकारिता, राष्ट्रीय प्रसार सेवा, ग्रामीण उद्योग और परिवार नियोजन आदि के एक दम नये आयाम उभरे ।

अप्रैल 1956 ई0 से दूसरी पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित हुई । यह योजना कृषक का भूमि पर अधिकार और सहकारी खेती को लेकर आई । लेकिन इसमें औद्योगीकरण पर अधिक बल दिया गया । राउरकेला, शिकाई और दर्गापुर में इस्पात के कारखाने और सिन्द्री में खाद के कारखाने द्वितीय योजना में ही खुले । अप्रैल 1961 ई0 से तीसरी पंचवर्षीय योजना लागू हुई । इस योजना से औद्योगीकरण की नींव और मज़बूत हुई ।

### 3. नेहरू का समाजवादी दृष्टिकोण

नेहरू जी समाजवादी थे । वे एक ऐसे समाजवादी समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें आर्थिक विकास का सूचक सामाजिक लाभ होता है । नेहरू जी के नेतृत्व में हर प्रकार के शोषण और वैषम्य को मिटाने के सतत प्रयास किये गये । 28 फ़रवरी सन् 1955 ई0 को संसद में 1955-56 के लिए अपना बजट पेश करते हुए तत्कालीन भारत के वित्तमंत्री सी0 एम0 देशमुख ने अपने बजट संबंधी प्रस्ताव में समाज को समाजवादी रूप देने के कार्य का श्रीगणेश सन्निहित मानते हुए कहा था कि- " मैं स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूं कि हमारा ध्येय न्याय संगत और प्रगतिशील समाज की स्थापना करना है । इस हेतु हम अपने सब

साधनों का उपयोग करेंगे । हम इस बात को मानते और समझते हैं कि कोई भी व्यक्ति तब तक अच्छे से अच्छा काम करने को उत्साहित नहीं होगा जब तक कि उसके समाज में वर्ग संबंध काफी हद तक न्याय संगत न हों -- जब तक कि सब करीब-करीब बराबर न हों । मैं परिकल्पना की दृष्टि से भविष्य के गर्भ में एक नये समाज का उद्भव होता देख रहा हूँ ।"<sup>16</sup> वित्त मंत्री के इस वक्तव्य में नेहरू जी का समाजोन्मुखी नेतृत्व ही अभिव्यक्त हुआ था । नेहरू जी चाहते थे कि देश की संमस्त आर्थिक समस्याओं का समाधान सृजनात्मक, शान्तिपूर्ण और समाजवादी मूल्य दृष्टि से हो । वे समाजवादी आदर्शों को व्यावहारिक रूप देने के पक्षधर थे । कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में 10 नवम्बर 1956 ई० को नेहरू जी ने यह घोषणा की कि - " हम एक नये प्रकार का समाजवाद बनाने जा रहे हैं जो संसार में कहीं भी नहीं है । इसके लिए प्रत्येक कांग्रेस कार्यकर्त्ता को कम से कम सौ परिवार की सुख-सुविधा का ध्यान निःस्वार्थ भाव से रखना होगा ।"<sup>17</sup> आलोच्य कालीन भारतीय समाज नेहरू जी के प्रधान मंत्रित्व से निर्देशित और संगठित हो रहा था । वस्तुतः उनका समाजवादी दृष्टिकोण अपनी व्यवहार्यता के कारण सम्पूर्ण समाज को प्रभावित कर रहा था ।

#### 4. औद्योगीकरण

आलोच्यकालीन भारतीय सरकार ने देश के विकास के लिए औद्योगीकरण को प्रमुखता दी । नेहरू जी ने यंत्र को देवता माना । वे यह मानते थे कि आर्थिक ढांचे में सुधार केवल औद्योगीकरण से ही सम्भव है । इसीलिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना में होने वाले कुल व्यय का पचास प्रतिशत उद्योग-धन्धे के लिए निश्चित किया गया । नेहरू जी ने इस संदर्भ में अपने एक भाषण में कहा था- " अब जो हमने दूसरी पंचवर्षीय योजना बनाई है, उसमें हमने कारखाने बनाने की तरफ़ ज़्यादा ध्यान दिया है । क्योंकि अगर बड़े कारखाने नहीं बनेंगे तो हम देश की बेरोज़गारी को कम नहीं कर सकते । इस लिए हमें दोनों तरफ़ तरक्की करनी है । कारखाने बढ़ाने हैं, ताकि बेरोज़गार लोगों को रोज़गार मिले और देश में बहुत सा धन पैदा हो ।"<sup>18</sup> बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कृषि उत्पादन की सीमितता भी बढ़ी । परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण जनता रोज़ी-रोटी की तलाश में शहरों की ओर भागने लगी । जनता के इस पलायन की समस्या के समाधान के लिए सरकार ने आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों से युक्त बड़े-बड़े उद्योगों के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं कुटीर उद्योगों का आरम्भ

किया । इस औद्योगीकरण के कारण ही नेहरू युग में राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई ।

### 5. बेरोज़गारी

अंग्रेज़ों ने भारत पर शासन के साथ-साथ भारत को अपने देश में उत्पादित सामान के लिए बाज़ार भी बनाया । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भारतीय हस्तशिल्प और उद्योग-धन्धों को हतोत्साहित करके लगभग नष्ट ही कर दिया । आधुनिक मशीनीकरण से भारतीय श्रमिक अनुपयोगी हुए । अव्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करके लाखों युवक-युवतियां स्नातक और परास्नातक हुए । इसके अतिरिक्त भारत-विभाजन के फलस्वरूप पाकिस्तान से लाखों साधन हीन लोग शरणार्थी के रूप में भारत आये । ये कुछ ऐसे प्रमुख कारण हैं जिनके कारण आलोच्य युगीन समाज में बेरोज़गारी की भयंकर समस्या उत्पन्न हुई । प्रथम पंचवर्षीय योजनाकी अवधि में 33 लाख और द्वितीय योजना की अवधि में 71 लाख बेरोज़गार रोज़गार कार्यालयों में पंजीकृत थे ।

### सामाजिक परिवेश

#### 1. सामाजिक समानता का वैधानीकरण

भारतीय समाज का ढांचा वर्णोद्भूत भेद-भाव की नीति से निर्मित हुआ था । ऊंच-नीच, सवर्ण-अछूत के रूप में विभक्त इस समाज का संचालन मनुवादी मान्यताओं के आधार पर ब्राह्मणीय शक्ति द्वारा होता था । तथाकथित सवर्ण शूद्रों के साथ पशुवत् व्यवहार किया करते थे । डब्लू० एन० कुबेर के शब्दों में - " सवर्ण हिन्दू किसी अछूत को छूना पाप समझते थे । उनकी छाया पड़ने और आवाज़ सुनने मात्र से असुचिता लगती थी । उनपर यह भी प्रतिबन्ध था कि वे कौन से जानवर पाल सकते हैं और किस धातु के ज़ेवरों का इस्तेमाल कर सकते हैं उन्हें गांव के बाहर नारकीय गन्दगी में रहने के लिए विवश किया जाता था । उनकी दशा दयनीय थी । वे कुओं से पानी नहीं भर सकते थे । उनके बच्चे उन स्कूलों में नहीं जा सकते थे जिनमें सवर्णों के बच्चे पढ़ते थे । मन्दिरों के दरवाज़े उनके लिए बन्द थे ।"<sup>19</sup> कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय समाज में अस्पृश्यता की समस्या सीमा की चरम स्थिति तक पहुंच गयी थी । मानवीय जीवन मानव भेद-भाव से अभिशप्त था ।

भारतीय अस्पृश्यता के समाधानार्थ समाज के शुभचिन्तकों ने समय-समय पर अथक प्रयास किए । डा० भीमराव अम्बेडकर इस पुनीत कार्य में सफल हुए । भारतीय संविधान का मस्विदा ( प्रारूप ) समिति के अध्यक्ष



के रूप में उन्होंने 395 अनुच्छेद और 9 अनुसूचियों वाला जो संविधान तैयार किया उसमें सामाजिक समानता को मूल अधिकार के रूप में स्थान दिया।<sup>20</sup> डा० राजेन्द्र मोहन भटनागर के शब्दों में - " संविधान का निर्माण करते हुए भी उन्होंने भारतीय जीवन के विरोधाभास तथा असंगतियों को ध्यान में रखकर ऐसी व्यवस्था की कि जिससे विरोधाभास में समता-सूत्र स्थापित हो सके और भेद-भाव रहित समाज का निर्माण हो सके।"<sup>21</sup>

26 जनवरी सन् 1950 अथवा स्वतंत्र भारत के संविधान के क्रियान्वयन वाले दिन से भारतीय समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। सामाजिक विचारधाराओं एवं रीति-रिवाजों पर संवैधानिक नियंत्रण लगा है। धर्म, जाति, वंश, लिंग एवं स्थान के आधार पर मनुष्य का मनुष्य के प्रति होने वाला असमानता जन्य अन्यायपूर्ण व्यवहार संविधान में दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया। अब समाज में न कोई ऊंचा रहा न कोई नीचा। सब समान हैं।

सामाजिक समानता के इस वैधानीकरण से सवर्णों का शूद्रों के प्रति दृष्टिकोण बदला है। शूद्रों को विकास करने के अवसर उपलब्ध हुए हैं। समाज की जातिगत दूरियां कम हुई हैं।

## 2. साम्प्रदायिक तनाव

भारत-विभाजन ने देश में चले आ रहे साम्प्रदायिक तनाव को और अधिक गहरा दिया था। डा० राजेन्द्र भटनागर के शब्दों में - " यह अत्यन्त घटनायुक्त समय था। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान बन गये थे। हिन्दू व मुस्लिम एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे थे। मौत का ताण्डव-नृत्य चारों ओर देखा जा सकता था।"<sup>22</sup> पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के अलगाव का मतलब था कि सभी मुस्लिम पाकिस्तान की सीमा में सिमट जायें और हिन्दुस्तान में गैर मुस्लिम ही रह जायें। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। पाकिस्तान में लाखों हिन्दू रह गये और भारत में करोड़ों मुसलमान रह गये। कारण कदाचित् यह था कि पाकिस्तान में रह गये हिन्दू और भारत में रह गये मुसलमानों के हृदय में अपनी जन्म भूमि के प्रति इतनी गहरी रागात्मकता थी कि परिस्थितियों के सर्वथा प्रतिकूल होने पर भी वे किसी भी मूल्य पर उसे छोड़ने के पक्ष में नहीं थे। संवैधानिक स्तर पर पाकिस्तान को एक मुस्लिम देश घोषित किया गया किन्तु भारत एक प्रजातांत्रिक देश के रूप में उभरा। व्यावहारिक स्तर पर बटवारे के परिणामस्वरूप भारतीय मुसलमानों को संदेह की दृष्टि से देखा गया। विशेष रूप से संकीर्ण हिन्दू

वैचारिकता को उनका भारत में रहना एक आंख भी नहीं भाया । वस्तुतः यह वैचारिकता अपने मूल में भारत को हिन्दू राष्ट्र देखने की पक्षधर थी । यद्यपि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के मध्य की समस्याओं को लेकर यह वैचारिकता निरन्तर गहराती गयी फिर भी हिन्दुओं की बड़ी संख्या उदारवादी एवं धर्मनिर्पेक्ष होने के कारण इस वैचारिकता की पक्षधर नहीं थी । हां इसका प्रभाव यह अवश्य हुआ कि समय-समय पर भारतीय मुसलमानों को अपने भारतीय प्रेम का सुबूत अवश्य देना पड़ा । अवधेश चन्द्र गुप्त की इस अवधारणा से सहमति व्यक्त नहीं की जा सकती कि " पाक-साम्प्रदायिक झगड़ों की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में भी हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक झगड़े भड़क उठे ।"<sup>23</sup> कारण यह है कि साम्प्रदायिक झगड़ों का इतिहास भारत-विभाजन के बाद का नहीं है । 1927 से 1947 तक भारत में जितने भयंकर और भीषण दंगे हुए उनके मूल कारण हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य पनपती संकीर्ण एवं कटूटर् धार्मिक मानसिकता में ही तलाशने होंगे ।

आलोच्य काल में दिल्ली के अतिरिक्त अन्य मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों- अलीगढ़, मेरठ आदि में भयंकर साम्प्रदायिक दंगे हुए । देश में हुए साम्प्रदायिक दंगों में साम्प्रदायिक संस्थाओं ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया । डा० बैजनाथ सिंहल के शब्दों में- " स्वातंत्र्योत्तर भारत में साम्प्रदायिकता ने सर्वाधिक व्यापक रूप ग्रहण किया है । हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, अकाली पंथ और मुस्लिम लीग इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ।"<sup>24</sup>

### 3. संयुक्त परिवारों का विघटन

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की परम्परा अति प्राचीन है । ऐसा भारतीय आर्थिक व्यवस्था के कृषि प्रधान होने के कारण हुआ । अधिक सदस्यों वाला परिवार कृषि में श्रम-विभाजन का अधिकाधिक लाभ उठा सकता है । इसलिए एक खानदान की कई-कई पीढ़ियां साथ-साथ रहना पसंद करती थीं । लेकिन जनसंख्या में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि पर बढ़े अतिरिक्त भार, औद्योगीकरण, यातायात की सुविधा, शहरीकरण, शिक्षा और सरकारी सेवा के कारण संयुक्त परिवार विघटित हुए । एक ही परिवार के विभिन्न व्यक्ति जीविकोपार्जनार्थ अलग-अलग स्थानों पर जाकर वहां रहने को बाध्य हुए । उन्हें अपनी पत्नी और सन्तानों को अपने साथ रखना पड़ा । इससे वैयक्तिक तथा इकाई परिवारों का निर्माण हुआ । इन परिवारों की अवधारणा पति-पत्नी और नाबालिग सन्तानों तक सिमट कर रह गयी । इन वैयक्तिक परिवारों के निर्माण में परिवार के सदस्यों के मध्य

अलग होकर एकान्त में अध्ययन करने को प्रेरित किया । अतः प्रतियोगिताशील समाज के द्वारा फुसलाया एकान्त अकेलेपन का प्रमुख कारण बना ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि "संशय की एक रात" का समकालीन परिवेश हमारे देश के जन-जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तनों का परिवेश है । नयी राजनीतिक व्यवस्था, सुनियोजित आर्थिक विकास, विज्ञानोद्भूत तर्कशीलता और यांत्रिकता के प्रभाव स्वरूप अन्यानेक जीवन-मूल्य अस्तित्व में आये ।

X-X-X-X-X-X-X-X-X-X-X

1. नरेश मेहता, संशय की एक रात, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा० लि० बम्बई, संस्करण प्रथम, सन् 1962 ई०, पृ० शीषेबन्ध.
2. आजकल पत्रिका, अंक अगस्त सन् 1957 ई०, पृ० 66 (सम्पादकीय).
3. केशव गोपाल निगम, आजकल पत्रिका, अंक जून सन् 1951 ई०, पृ० 21.
4. डॉ० पी०एन० चोपड़ा (सम्पादक), द गजेटियर ऑफ इन्डिया (वोल्यूम चतुर्थ), मिनिस्ट्री ऑफ एजुकेशन एण्ड सोशियल वेल्फेयर, सन् 1978 ई०, पृ० 698.
5. वही.
6. उद्धृत - अशोक महाजन, सरस्वती पत्रिका, अंक फरवरी सन् 1964 ई०, पृ० 163.
7. आजकल पत्रिका, अंक अक्टूबर सन् 1955 ई०, पृ० 69 (सम्पादकीय).
8. सरस्वती पत्रिका, अंक मार्च सन् 1956 ई०, पृ० 144 (सम्पादकीय).
9. मेजर सीताराम जौहरी, सरस्वती पत्रिका, अंक फरवरी सन् 1964 ई०, पृ० 136.
10. जवरी मल्ल पारख, नयी कविता का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, के०एल० पचौरी प्रकाशन गाजियाबाद, संस्करण प्रथम, सन् 1991 ई०, पृ० 4.
11. उद्धृत - आजकल पत्रिका, अंक फरवरी सन् 1952 ई०, पृ० 45 ('भारत की प्रगति' स्थाई स्तम्भ).
12. "जब अंग्रेज विलायत से आते हैं, प्रायः कैसे दरिद्र होते हैं और जब हिन्दुस्तान से विलायत को जाते हैं तो कुबेर बनकर जाते हैं।" - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उद्धृत - मिथलेश, कृष्णा सोवती के कथा-साहित्य में सामाजिक चेतना (आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच०डी की उपाधि के लिए स्वीकृत अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध) पृ० 205.
13. डॉ० अरूणा गुप्ता, छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, संस्करण प्रथम, सन् 1989 ई०, पृ० 30-31.
14. विवेकी राम, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम्य जीवन, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण प्रथम, सन् 1974 ई०, पृ० 66.
15. चौधरी कृष्णगोपाल दत्त, आजकल पत्रिका, अंक मई सन् 1955 ई०, पृ० 11.

16. उद्धृत - वही, पृ० 13.
17. उद्धृत - डॉ० दशरथ ओझा, आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, संस्करण प्रथम सन् 1984 ई०, पृ० 30.
18. उद्धृत - डॉ० अरूणा गुप्ता, छोटे दशक की हिन्दी में जीवन-मूल्य, पृ० 47.
19. डब्ल्यू० एन० कुबेर, आधुनिक भारत के निमोता भीमराव, अम्बेडकर, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, संस्करण द्वितीय सन् 1990 ई०, पृ० 2.
20. "अनु० 15 धर्म, मूल वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधारों पर विभेद का प्रतिषेध करता है।" - जयनरायण पाण्डेय, भारत का संविधान, सेन्ट्रल ला एजेन्सी इलाहाबाद, संस्करण-23, सन् 1993 ई०, पृ० 86.
21. डॉ० राजेन्द्र मोहन भटनागर, डॉ० अम्बेडकर : जीवन और दर्शन, किताब घर दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण सन् 1990 ई०, पृ० 110.
22. वही, पृ० 108.
23. डॉ० अवधेश चन्द्र गुप्त, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : विचार तत्त्व, नीरज बुक सेन्टर दिल्ली, संस्करण प्रथम, सन् 1984 ई०, पृ० 73.
24. डॉ० ब्रैजनाथ सिंहल, नयी कविता : मूल्य-मीमांसा, मंथन पब्लिकेशन्स रोहतक, संस्करण प्रथम, सन् 1985 ई०, पृ० 17.
25. डॉ० राजेन्द्र मोहन भटनागर, डॉ० अम्बेडकर : जीवन और दर्शन, पृ० 153-54.
26. डॉ० गोविन्द रजनीश, सम-सामयिक हिन्दी कविता : विविध परिदृश्य, देवनागर प्रकाशन जयपुर, संस्करण और समय नहीं दिया गया है, पृ० 138.

## अध्याय – चार

## समकालीन जीवन-मूल्य और 'संशय की एक रात'

### समकालीन : अर्थ एवं परिभाषा

" समकालीन" शब्द संस्कृत के "काल" शब्द में "सम" उपसर्ग और "इन" प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है - सम् (समान)+काल+इन (का)= समकालीन । शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से "समकालीन"का अर्थ हुआ "समान काल का" । हिन्दी में समकालीन के पर्याय के रूप में -समकालिक, सामयिक, तत्कालिक और तत्कालीन शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है । समकालीन शब्द के अर्थ का सम्प्रेषण अंग्रेजी के "कन्टेम्पोरेरी" शब्द के पर्याय रूप में किया जाता है ।

सामान्यतः समकालीन का अर्थ समान समय, युग या अवधि से संबंधित अर्थात् एक समय में साथ-साथ जीवन-निर्वाह करने, अस्तित्ववान होने या घटित होने से लगाया जाता है ।<sup>1</sup> यह अर्थ शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर ग्रहण किया गया है ।

स्वरूपतः समकालीनता काल सापेक्ष है । इसलिए समकालीन को काल की सीमाओं में रहते हुए ही परिभाषित किया जा सकता है । अतः ऐतिहासिक दृष्टि से मानव मूल्य और सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन ला देने वाली घटनाओं से विलगित कालावधि विशेष के अन्तर्गत घटित या प्रत्ययों को उस अवधि की सीमा में आने वाले अन्य प्रत्ययों का समकालीन कहा जाता है । प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में समकालीन को इसी अर्थ में ग्रहण किया गया है । स्वतंत्रता प्राप्ति काल ( सन् 1947 ई0 ) और चीनी आक्रमण काल ( सन् 1962 ई0 ) के बीच की अवधि में पनपते भारतीय समाज के जीवन-मूल्यों को ही समकालीन जीवन-मूल्य के रूप में स्वीकार करते हुए विवेच्य-विषय की शोधपरक प्रस्तुति ही इस प्रबंध का अभीष्ट है ।

### समकालीन जीवन-मूल्य

स्वतंत्रता प्राप्ति मात्र राजनैतिक उपलब्धि नहीं थी । यहां से भारतीय समाज की मूल्य चेतना के लिए

नवीन युग का सूत्रपात भी हुआ । द्वितीय विश्व युद्ध में हुए महानाश के पश्चात् मिली स्वतंत्रता ने भारतीय जीवन शैली को पूर्णरूपेण बदल दिया । "स्वातंत्र्योत्तर काल में स्वातंत्र्योपूर्व कोई भी मूल्य अपने पूर्व या मूल रूप में नहीं रहा ।"<sup>2</sup> डा० अरूण गुप्ता के शब्दों में- " स्वतंत्र भारत का यह प्रथम दशक मूल्य चेतना की दृष्टि से संक्रमण का युग था ।"<sup>3</sup>

आलोच्यकालीन भारतीय समाज में स्वातंत्र्य मूल्य भावना का भरपूर विकास हुआ । लोकतन्त्रात्मक शासन पद्धति के अस्तित्व में आ जाने से समाज में सामूहिक निर्णय महत्त्वपूर्ण हुए । समानता के मूल अधिकार के रूप में स्वीकृत होने से स्त्री और निम्न वर्ग के लोगों की जीवन-शैली बदली । नियोजित आर्थिक विकास ने समाज की आर्थिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया । "स्वतंत्रता के उपरान्त अर्थ-व्यवस्था के नये परिवर्तन ने मनुष्य को अर्थ (पैसा, धन आदि ) में भी विभाजित कर दिया । इतना ही नहीं वह जीवन की ओर आर्थिक दृष्टि से देखता है, जीवन को तोलता है, नापता है और जीवन की कीमत करता है ।"<sup>4</sup> पहले वर्ग (वर्ण) धर्मानुमोदित होते थे और स्वतंत्रता के पश्चात् वर्गों का अनुमोदन अर्थ के आधार पर होने लगा । परम्परागत अन्धश्रद्धायुक्त धर्म की शक्ति, लोकतंत्र की धर्म, जाति, वर्ग निरपेक्ष, समानाधिकार संबंधी मूल्य व्यवस्था के कारण कम हुई है । जिससे भारतीय संस्कृति के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है । पहले जीवन-मूल्य, व्यवहार में आड़े आने वाला अनावश्यक शील संकोच इस काल में कम हुआ और आत्म-प्रदर्शन का मूल्य प्रतिष्ठित हुआ । अतः समाज में सांस्कृतिक स्तर पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा हुई । इस मूल्य की प्रतिष्ठा में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गठित "कांग्रेस फ़ार कल्चरल फ़्रीडम" ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई । विज्ञान और तकनीकी विद्या से तर्कानुमोदित जीवन-दृष्टि विकसित हुई । अन्धश्रद्धा और अन्ध विश्वास पर आधारित जीवन-मूल्य विघटित हुए । डा० भरत कुमार सिंह के मतानुसार - " सन् 1947 ई० के पश्चात् आधुनिक तकनीक विद्या और उसके मानवीय जीवन पर होने वाले परिणामों से मनुष्य को नई सभ्यता, नई संस्कृति मिली । स्वातंत्र्योत्तर समाज में नई दृष्टि विकसित हुई । " 5

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर यह काल मानव-मुक्ति और उससे संबद्ध आन्दोलनों का काल रहा है । साम्राज्यवादियों के उपनिवेश स्वतंत्र होने के लिए युद्ध कर रहे थे । हमारे देश के स्वतंत्र होने के



पश्चात् एशिया और अफ्रीका के अनेक देश स्वाधीन हुए । अमेरिका आदि पूंजीवादी देश महाविनाशकारी शस्त्रों के उत्पादन में तल्लीन थे । ऐसे वातावरण में शान्ति की स्थापना का मूल्य जनवादी दृष्टिकोण से सम्पन्न समस्त लोकतंत्रों में महत्वपूर्ण हो गया । भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं.नेहरू को शान्ति का दूत कहा गया । वस्तुतः विवेच्यकालीन समाज में "शान्ति की स्थापना" का प्रश्न एक प्रमुख जीवन-मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ ।

सुविधा की दृष्टि से विवेच्यकालीन जीवन-मूल्यों को प्रमुख रूप से निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है -

1. सामाजिक जीवन-मूल्य - समानता, एकता की भावना, नारी माहत्म्य और पारिवारिक संबंधों का निर्वाह ।
2. राजनैतिक जीवन-मूल्य - लोकतंत्रात्मकता ( मताधिकार, चुनाव, सामूहिक निर्णय ), स्वतंत्रता, साम्राज्यवाद, औपनिवेशिकता का विरोध और शान्ति की स्थापना ।
3. आर्थिक जीवन-मूल्य - योजनाबद्ध विकास, उपयोगितावादी दृष्टि, वस्तु-विनियोग, मशीनीकरण और निर्माणात्मकता ।
4. वैज्ञानिक जीवन-मूल्य - यंत्रमयता, कण की महत्ता में विश्वास और मानव हित में आणविक शक्ति का प्रयोग ।
5. नैतिक जीवन-मूल्य - मानव-प्रेम, देश-प्रेम, बलिदान और न्यायवादिता ।
6. दार्शनिक जीवन-मूल्य - ज्ञान, व्यक्ति की प्रतिष्ठा, क्षणवादिता, अस्तित्ववाद, लौकिकता, यथार्थवादी दृष्टि और जनवादिता ।

उक्त जीवन-मूल्यों को दृष्टि में रखते हुए संशय की एक रात में अभिव्यक्त जीवन-मूल्यों को रेखांकित करते हुए उनके समीक्षात्मक मूल्यांकन की प्रस्तुति तर्कसंगत जान पड़ती है ।

### संशय की एक रात : कथानक

संशय की एक रात नयी कविता के दौर की एक महत्वपूर्ण काव्य-कृति है । काव्य रूप की दृष्टि से यह एक खण्ड-काव्य है । इसका कथानक चिरपरिचित राम कथा की एक ऐसी शंकाकुल रात पर केन्द्रित है जो सेतुबंध और लंका-युद्ध के मध्य राम की मनःस्थिति का सूक्ष्म रेखांकन करती है । पूर्व रचित राम काव्यों

में संशय की यह रात अनछुई रह गयी है । समकालीन वैचारिक उथल-पुथल के बीच से गुज़रते समाज का एक तर्कानुमोदित दृष्टि देने के विचार से नरेश मेहता ने इस स्थल को अपनी चेतना के केन्द्र में रखते हुए समीक्ष्य काव्य का सृजन किया । इस तथ्य को स्वीकारते हुए कवि ने स्वयं लिखा है - " अपने विशेष प्रयोजन के लिए ही राम कथा का मैंने यह स्थल चुना जो घटनाहीन था किन्तु मेरी रचना-संभावना के लिए उर्वर । राम जिस संशय को प्रस्तुत करते हैं उसके लिए यही उपयुक्त स्थल था ।"<sup>6</sup>

इस खण्ड काव्य की सम्पूर्ण कथा चार सर्गों में निबद्ध है । ये सर्ग निम्नलिखित हैं -

1. सांझ का विस्तार और बालूतट
2. वर्षा भीगे अन्धकार का आगमन
3. मध्य रात्रि की मंत्रणा और निर्णय
4. सन्दिग्ध मन का संकल्प और सवेरा

प्रथम सर्ग में भाद्रपद की सांझ के समय राम सिन्धु बेला पर टहलते हुए सामने आते हैं । सेतुबंध तैयार हो गया है । राम उदास और प्रश्नाकुल हैं । राम को रावण के द्वार से शान्ति के दूतों के हारकर लौटने और स्वर्ण मृग के पीछे जाने का परिताप साल रहा है । इसी बीच लक्ष्मण पम्पा की सन्धि और उसके सेना-सहयोग की सूचना उन्हें देते हैं ।

राम दशरथ और जटायु की मृत्यु, अंगद के उपेक्षित होने, हनुमान के देह दाही होने , उर्मिला के विरहिणी होने का निमित्त स्वयं को मानते हैं और सीता-हरण को अपनी वैयक्तिक समस्या स्वीकार कर युद्ध को टालना चाहते हैं । लक्ष्मण उत्साह पूर्वक राम की उदासीनता तोड़ने का प्रयास करते हैं, किन्तु राम युद्ध से बचकर मानव की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित करने की बात कहते हैं । वे युद्धान्तर्गत होने वाले नरसंहार के व्यामोह के प्रति वितृष्णा से भर उठे हैं । युद्ध के अनौचित्य पर टिप्पणी करते हुए राम सूर्यास्त वाली भाद्रपद की सांझ को सम्बोधित करने लगते हैं । यहीं सर्गान्त हो जाता है ।

द्वितीय सर्ग में राम सेतुबंध की एक बुर्जी पर चले जाते हैं । लक्ष्मण उन्हें प्रश्नों में घिरा छोड़कर चले गये हैं । धाराधार वर्षा आरम्भ हो जाती है । संशय ग्रस्त राम मूर्तिवत विचलित हैं । तभी नील उन्हें सूचना

देता है कि पूरब के सेतु बुर्ज के पीछे एक ऐसी अदृश्य छाया घूमती दिखती है जिसपर बाण प्रहार भी असफल हो रहा है । राम छाया के समीप जाते हैं । उसके अंक में एक पक्षी फड़फड़ाता है । छाया अकेले में बात करने के लिए राम को अलग ले जाती है । छाया राम को बताती है कि वह दशरथ की और पक्षी जटायु की आत्मा है । ये दोनों आत्माएं राम के द्वारा किये गये अग्निदाह से तुष्ट हैं और उनका कल्याण चाहती हैं । ये मृतात्माएं कर्म का महत्व बताते हुए राम को असत्य से युद्ध करने के लिए प्रेरित करती हैं ।

तृतीय सर्ग में मध्य रात्रि के समय युद्ध परिषद् की बैठक होती है । अपने शिविर में राम ने लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव, जामवन्त आदि सामन्तों के साथ बैठकर युद्ध मंत्रणा की । युद्ध परिषद् में दिये गये सामन्तों के तर्कों से राम का संशय टूटता है । हनुमान सीता-हरण को साधारण जन की स्वतंत्रता का अपहरण बताते हुए राम की निजी समस्या का मानवीकरण कर देते हैं । इससे राम जिसे व्यक्तिगत समस्या मान बैठे थे उसका सार्वजनीकरण हो जाता है । सुग्रीव कहते हैं कि युद्ध से इतिहास बनता है । विभीषण युद्ध को एक दर्शन बताते हुए उसे स्वत्व और अधिकार अर्जन का अन्तिम मार्ग बताकर युद्ध के औचित्य को रेखांकित करते हैं । इसप्रकार पक्षों के तर्कों के सामने राम निरुत्तर हो जाते हैं । उनके पास युद्ध का कोई विकल्प नहीं रह जाता । अतः वे परिषद के निर्णय ( युद्ध ) को "परिषद् की इच्छा" कहकर स्वीकृति दे देते हैं । यहीं सर्ग का अन्त हो जाता है ।

तृतीय सर्ग में युद्ध के लिए राम द्वारा दी गयी परोक्ष स्वीकृति चतुर्थ सर्ग में उनका संकल्प बन जाती है। अतः अब राम ने युद्ध वेश धारण कर लिया है । लक्ष्मण अन्य सामन्तों के साथ पार्थिव-पूजन के प्रबन्ध में व्यस्त हैं, जिसके बाद युद्ध के लिए अभियान होगा । राम ने युद्ध को अपने आचरण के रूप में अपना लिया है। वे सामूहिक निर्णय से प्रतिश्रुत युद्ध बन गये हैं । युद्ध के लिए उद्धत राम अपने अन्तर में व्याप्त संशय रूपी शिला को शान्त करते हैं । यहीं काव्यान्त हो जाता है ।

### संशय की एक रात में अभिव्यक्त जीवन—मूल्य

संशय की एक रात में पौराणिक कथानक को आधुनिक बोध के साथ प्रस्तुत किया गया है । साम्राज्यवादी अथवा औपनिवेशिकता की प्रवृत्ति के दुष्परिणाम स्वरूप उत्पन्न युद्ध की स्थिति में आधुनिक प्रज्ञा ने

जो सोचा उसे राम और उनके पार्षदों के माध्यम से इस कृति में अभिव्यक्त किया गया है । स्वयं रचयिता की स्वीकारोक्ति है कि - " प्रस्तुत कृति में राम आधुनिक प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करते हैं ।"<sup>7</sup> राम को आधार बनाकर युद्ध की समस्या के संदर्भ में उठाए गये प्रश्नों और अन्य पात्रों द्वारा उन प्रश्नों के तर्कानुमोदित समाधान प्रस्तुत करने में कृति की सार्थकता सिद्ध हुई है । समीक्ष्य कृति में युद्ध के परिणाम को लेकर प्रज्ञा पुरुष राम संशय के शिकार हुए हैं । राम का यह संशय युद्ध दर्शन को समेटे हुए है । युद्ध और शान्ति से सम्बद्ध प्रश्नों और उसके समाधान प्रस्तुत करने के प्रयोजन से इस काव्य में जो संवाद-योजना की गयी है उससे मानवीय मूल्य और मान्यताओं के परस्पर टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । यह टकराव व्यक्ति (राम) और समाज (राम के पार्षदों ) के मध्य हुआ है, जिसमें निर्णय समाज के पक्ष में हुआ है । वस्तुतः **संशय की एक रात** जीवन-मूल्यों के उद्घापोह को अभिव्यक्त करने वाली काव्य-कृति है ।

प्रत्येक रचना युगीन संदर्भों को आधार रूप में ग्रहण करके ही लिखी जाती है । यहां यह उल्लेख है कि समीक्ष्य कृति के अस्तित्व में आने के पूर्व और आने की प्रक्रिया की अवधि में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उत्पन्न युद्धीय स्थिति में भारतीय प्रज्ञा शान्ति की स्थापना के लिए पंचशील के सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार कर रही थी । इसका प्रभाव कवि के मानस पर पड़ा और उसने युद्ध और शान्ति की समस्या को आधार बनाकर **संशय की एक रात** का सृजन किया । यह खण्ड-काव्य 28 अप्रैल सन् 1962 को पूर्ण हुआ और 20 अक्टूबर 1962 को चीन ने भारत पर आक्रमण किया था । इसलिए यह तो कहा जा सकता है कि इस रचना का सृजन भारत-चीन के युद्ध की पृष्ठभूमि में हुआ । लेकिन यह कहना कि **संशय की एक रात** पर इस युद्ध का प्रभाव है, वैज्ञानिक नहीं है । डा० हुकुम चन्द राजपाल ने इस काव्य को भारत-चीन युद्ध के प्रभाव स्वरूप सृजित काव्य माना है । उन्होंने **संशय की एक रात** के नायक राम के आत्म संघर्ष को चीनी आक्रमण के समय रचनाकार के मन में घर कर गयी स्थिति का परिणाम स्वीकारते हुए लिखा है कि- " रचनाकार भी एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समकालीन संदर्भों अथवा युगबोध से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित अवश्य होता है । प्रस्तुत रचना में कवि ने भारतीय शीर्षस्थ नेताओं को अत्यधिक उद्भ्रान्त स्थिति में पाया । चीनी आक्रमण के समय ऐसी स्थिति रचनाकार के मन में घर कर गयी और उसी का परिणाम है कि राम के संशयी

रूप में इसने आत्मसंघर्ष को प्रचण्ड युद्ध की अनिवार्यता तक ले आने का सार्थक उपक्रम किया है।<sup>8</sup> वस्तुतः डा० हुकुम चन्द राजपाल द्वारा प्रदत्त उक्त निष्कर्ष औचित्यहीनता का बोधक है।

संशय की एक रात में पौराणिक प्रजा पुरुष का सहारा लेकर आधुनिक जीवन-दृष्टि की अभिव्यक्ति करना ही कवि का अभिप्रेत रहा है। इस काव्य में समकालीन जीवन-दृष्टि की व्याख्या करने के प्रयोजन से पौराणिक अथवा मिथकीय कथा-प्रसंग का सार्थक प्रयोग किया गया है। इस तथ्य की पुष्टि डा० हरिचरण शर्मा के मत से हो जाती है। उनके मतानुसार— "पुराने गरिमामय पुरुष का सहारा लेकर आधुनिक युग के मूल्य और मान्यताओं को प्रस्तुत करना कोई आसान कार्य नहीं है, क्योंकि एक युग की गरिमा दूसरे युग की ... गरिमा के सर्वथा विपरीत होती है फिर भी लघुआकार वाले खण्ड-काव्य में कवि ने इस काम को कर दिखाया है।"<sup>9</sup>

संशय की एक रात में जिन जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है उनका विवेचन यहां प्रस्तुत है -

### राजनैतिक जीवन-मूल्य

#### 1. राजनैतिक संधि और सहयोग

संकट के समय राजा दूसरे राजाओं से संधि स्थापित करते हैं और उनसे आर्थिक, सैनिक अथवा अन्य किसी प्रकार का सहयोग मांगते हैं। राजनैतिक संधि और सहयोग के लिए राजनायकों के मध्य विचार-विमर्श और सशर्त निर्णय लिए जाते हैं। वस्तुतः यह एक महत्वपूर्ण राजनैतिक मूल्य है। संशय की एक रात में इस मूल्य का बहुत अच्छी तरह प्रतिपादन किया गया है। प्रजा के मनोनीत राजन राम लंका युद्ध की समस्या को लेकर परीक्षान हैं। लक्ष्मण उनको सूचित करते हैं कि पम्पा ने उनसे सन्धि कर ली है और वे सेना-सहयोग भी देंगे। यथा :

" पम्पा ने कर ली है सन्धि देव !

स्वीकृत है ।

सेना सहयोग भी ।

आज ही रात

राजा भी आएंगे

सेवा में ।"10

इसपर राम लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि वे इस विषय में जैसा उचित समझें विचार विमर्श कर लें :

"लक्ष्मण !

जैसा उचित समझो

बात कर लो

तुम्हीं मेरी इन्द्रियां हो ।"11

राजनैतिक संधि और सहयोग की प्रक्रिया की यह कलात्मक अभिव्यक्ति श्लाघ्य है ।

## 2. समानता की प्रतिष्ठा

समानता का संबंध मनुष्य के अस्तित्व बोध से होता है । जिस राज्य में असमानता की स्थिति होती है वहां साधारण जनता प्रतिष्ठित लोगों की दमनात्मक नीतियों के तहत अस्तित्वहीनता की स्थिति में जीवन-निर्वाह करती है । राज्य व्यवस्था के निर्धारण और उसके संचालन में ऐसी जनता की कोई भागीदारी नहीं होती । भारत वर्ष इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । हमारे देश में प्राचीन समय से असमानता की स्थिति रही है । धर्म, जाति, कुल, अर्थ, भाषा और क्षेत्रादि के आधार पर मानव जाति पृथक्-अस्पृश्य, निम्न-उच्च जैसे विभिन्न अलगाव वादी खानों में विभाजित रही है । इससे भारतीय समाज में अन्तर्विरोध पनपे हैं । जिससे इकाईभूत व्यक्ति के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्र का विकास अवरूद्ध हुआ है ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के साथ हमारे देश में समानता की भी नींव पड़ी है । मानवीय जीवन-व्यवहार में असमानता के परिणाम स्वरूप जो अन्तर्विरोध आ गये थे, वे शनैः शनैः कम होने लगे ।

नरेश मेहता ने भारतीय समाज की इस परिवर्तित स्थिति का अनुभव किया और समीक्ष्य रचना में समानता के मूल्य का निरूपण कर स्तुत्य कार्य किया । लंका पर आक्रमण करने के लिए सेतु निर्माण में निर्माताओं ने सारे भेद-भाव भुलाकर योग दिया:

" भुलाकर सारे जाति कुलों के

राग-द्वेष

गुल्म भाव प्रादेशिकता

ये छोटे-छोटे बौने

किस आवाहन पर

महासेतु निर्माण कर रहे ?

वह महासेतु

जो कि प्रथम आश्चर्य सृष्टि का

मानव के विद्रोह भाव का

प्रथम

किन्तु अद्भुत प्रतीक है ।"<sup>12</sup>

यह सेतु मानव की अमानव पर विजय का प्रतीक है । समाज की अद्भुत उन्नति का प्रतीक है, जिसे समान रूप से संगठित होकर ही प्राप्त किया जा सकता है । अलग-अलग खानों में बंटकर नहीं ।

इतना ही नहीं नरेश मेहता ने समानता के मूल्य को इतना अधिक महत्व दिया है कि जटायु और चक्रवर्ती राजा दशरथ को समादृत चित्रित किया है । राम ने जटायु को पिता के पद पर रखकर अग्निदाह किया । जटायु कहता है: -

" दशरथी !

पिता पद पर मुझे रख

जो अग्नि दी थी

उससे मैं तुष्ट हूँ !

तुम्हारा कल्याण हो ।"<sup>13</sup>

समानता-धृत जीवन-व्यवहार से जो विकास की संभावना बनती है उसका भाव उक्त पंक्तियों से स्पष्ट

होता है ।

राम को समझा देने के बाद जब छाया (दशरथ) और जटायु जाने को कहते हैं तब जटायु छाया से कहता है -

आओ, आओ

समादृत राजन !

आओ चलें ।

### 3. स्वतंत्रता की रक्षा

रूसो ने कहा है कि मनुष्य स्वतंत्र पैदा होता है लेकिन वह सर्वत्र जंजीरों में जकड़ा हुआ है ।<sup>14</sup> वस्तुतः मनुष्य का यह जंजीरों से जकड़ना मनुष्य पर दूसरे व्यक्ति अथवा शक्तियों का अंकुश है, जो उसके सर्वांगीण विकास में न केवल बाधक होता है बल्कि मनुष्यता के लिए अपमान का सूचक है ।

परतंत्र और शोषित जनता अन्ततः स्वातंत्र्य भाव से प्रेरित होकर शोषक के विरुद्ध विद्रोह करने को तैयार होती है । इस बिन्दु को नरेश जी ने संशय की एक रात में उठाया है । रावण के विरुद्ध युद्ध के लिए असंख्य साधारण जनो को उद्धत होना इसी तथ्य का उद्घाटन करता है ।

रावण के द्वारा अपहरण कर लंका ले जाई गयी सीता साधारण जनता की अपहृत स्वतंत्रता है । हनुमान के शब्दों में -

" रावण अशोक वन की सीता

हम साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता ।"<sup>15</sup>

इस अपहृत स्वतंत्रता की रक्षा के लिए सभी प्रयास रत हैं । लक्ष्मण अपने पुरुषार्थ से सीता के रूप में अपहृत स्वतंत्रता को वापस लाने का दावा करते हैं -

" आप रुकें रामेश्वर

जायेगा लक्ष्मण ले अभियान !

यदि नितान्त एकाकी भी जाना पड़े



जाऊंगा ।

बन्धु ! जाऊंगा

सीता को लाऊंगा

अपने पुरुषार्थ से ।"<sup>16</sup>

#### 4. बहुमत अथवा सामूहिक निर्णय का महत्व

बहुमत अथवा सामूहिक निर्णय लोक तंत्रात्मक शासन प्रणाली का आधार होता है । सामूहिक निर्णय साधारण जनता की हित भावना से ओत-प्रोत होते हैं । जहां बहुमत का महत्व होता है, वहां व्यक्तिगत स्वार्थ एवं निर्णय को झुकना पड़ता है । संशय की एक रात में इस तथ्य की बहुत सलीके से अभिव्यक्ति की गयी है ।

युद्ध की समस्या को लेकर राम संशय ग्रस्त हैं । "युद्ध हो या न हो" की स्थिति उनके अन्तस् में घर कर गयी है । राम को इस स्थिति से उबारने के लिए युद्ध-परिषद् की बैठक होती है । इस बैठक में लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान, सुग्रीव और जामवन्त आदि सामन्तों ने भाग लिया । इस बैठक में विभीषण बहुमत को स्पष्ट करते हुए कहते हैं -

" बहुमत

न्याय है, सत्य है

ऐतिहासिक नियति है

हर व्यक्ति की ।"<sup>17</sup>

युद्ध परिषद् की बैठक में पार्षदों ने तर्क के आधार पर युद्ध की अनिवार्यता को सिद्ध करके यह सामूहिक निर्णय लिया कि युद्ध हो । इस सामूहिक निर्णय से राम का एकत्व समाप्त हो गया । वे व्यक्ति से उठकर बहुमत बन गये । उन्होंने कहा -

" अब मैं निर्णय हूँ

सबका

अपना नहीं !

कैसी विडम्बना—

मेरा चिन्तन खड़ग करेगा

और आचरण युद्ध बनेगा ।

क्योंकि मैं निर्णय हूँ

हो चुका हुआ अब निर्णय हूँ

व्यक्ति नहीं ।"18

#### 5. साम्राज्यवाद एवं औपनिवेशिकता का विरोध

साम्राज्यवादी मनोवृत्ति मानवता विरोधी है । इसलिए इसका विरोध हर मानववादी मनुष्य का जीवन-मूल्य बन जाता है । क्योंकि इसके विरोध में समाज अथवा राष्ट्र की उन्नति की सम्भावनाएं सन्निहित रहती हैं ।

संशय की एक रात में रावण को साम्राज्यवादी के रूप में चित्रित किया गया है । रावण की अमानवीय साम्राज्यवृत्ति ने जन साधारण को उसका युद्ध स्तर पर विरोध करने के लिए बाध्य किया । रावण की साम्राज्यवृत्ति के संदर्भ में हनुमान के शब्द उल्लेखनीय हैं —

हम साधारण जन

युद्ध प्रिय थे कभी नहीं

और न लंका युद्ध लड़ेंगे

युद्ध भाव से !

महाराज !

साम्राज्यवृत्ति के द्वारा

हम साधारण जन

अर्ध सम्भव कर दिये गये ।

हमने राक्षस रथ खेंचे

दास भाव से ।

बदले में  
 नर नहीं  
 वानर पद प्राप्त किये ।  
 लंका में हम  
 भोज्य पदार्थों से बिकते हैं ।  
 गरम सलाखों से  
 प्रत्येक पृथुज्जन देह लिखी है  
 ये गुलाम हैं  
 इनका केवल यही नाम है ।<sup>19</sup>

कहने का तात्पर्य यह है कि रावण की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति एक राक्षसी वृत्ति के रूप में उभरी ।  
 इसलिए जनता को वह किसी भी मूल्य पर स्वीकार्य नहीं है । जनता उसका कटिबद्ध विरोध करने को तत्पर  
 है, जिससे मनुष्य को निरंकुश जीवन जीने का अवसर मिले । रावणीय औपनिवेशिकता का विरोध हनुमान के इन  
 शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है—

हे रघुकुल तिलक !  
 हमारा यह सुन्दर दक्षिण प्रदेश  
 रावण  
 या किसी अन्य का  
 उपनिवेश हो  
 यह स्वीकार नहीं अब  
 किसी मूल्य पर ।<sup>20</sup>

वैयक्तिक मूल्य

संकल्प मनुष्य को सिद्धि अथवा उद्देश्य प्राप्ति तक पहुंचने वाला मूल्य है । जब व्यक्ति किसी कार्य में संकल्प प्रवृत्त होता है तो वह भटकने नहीं पाता और उसका अभीष्ट उसे प्राप्त हो जाता है । जिससे आत्म संतुष्टि होती है । सामान्य व्यवहार में यह देखा जाता है कि संकल्पी मनुष्य ही अधिक सफल जीवन का भोग कर सकता है । संशय की एक रात में संशयी राम के विपरीत लक्ष्मण को एक संकल्पी मनुष्य के रूप में चित्रित करके कवि ने मानवीय जीवन में संकल्प के महत्व को रेखांकित करने का सार्थक प्रयास किया है । संकल्पित होने के पश्चात् व्यक्ति में जिस आत्मविश्वास का संचार होता है उसे लक्ष्मण के अग्रांकित कथन में देखा जा सकता है -

हमारी जलती आंखों में

बंदी हुई मुट्ठी में

भिचे हुए ओठों में

इन उद्धत पैरों में

संकल्पित प्रज्ञा है

वर्चस्वी निष्ठा है

उत्सर्गित इच्छा है ।

हम केवल चलते हैं

अपने में

अपने से बाहर

धूप और अन्धकार चीरे

हम चलते हैं ।

चलने पर

संभव है—

तीर्थ मिले

कीर्ति मिले

चामर की छांह मिले ।

x x x x

संभव है

सांकल से बंधे हुए

जेता के रथ में हम

जुतने को

बाधित हों ।

विजयी राक्षस गण

जीवित ही भून दें

किन्तु

किन्तु यह असम्भव है

कर्म और वर्चस को

छीन सके कोई भी

जब तक हम जीवित हैं ।<sup>21</sup>

लक्ष्मण के उक्त कथन से प्रस्फुटित संकल्पोद्भूत आत्मशक्ति मानवीय जीवन को उन्नति के शिखर तक ले जाने वाली है । इस शक्ति के अभाव में मनुष्य का जीवन शिथिल होकर महत्वहीन हो जाता है ।

## 2. समर्पण

जीवन-व्यवहार में मनुष्य मान्य या सर्व स्वीकृत प्रत्ययों के प्रति समर्पण करता है । समर्पण में मनुष्य का एकत्वबोध, जो कि मनुष्य के विकास में एक बाधक तत्व है, बहुत्व या स्वीकार्य तत्व में विलीन हो जाता है । एक का अनेक में विलीन होना शक्ति का निर्माण होना होता है जिससे विकास का पथ प्रशस्त होता है । अतः समर्पण मानवीय जीवन में सकारात्मक भूमिका निभाता है ।

समीक्ष्य काव्य में नरेश मेहता ने काव्य नायक राम का समर्पण युद्ध परिषद् के प्रति करा कर जीवन में समर्पण के महत्व को स्पष्ट किया है । चतुर्थ सर्ग के प्रारम्भ में राम ने युद्ध परिषद की बैठक में युद्ध के पक्ष में हुए निर्णय के प्रति स्वयं को समर्पित करते हुए कहा :-

" मैंने अपने को सौंप दिया

ज्वारों को

विवश धरती सा सौंप दिया

अपने को सौंप दिया ।"<sup>22</sup>

एक जन नायक का यह समर्पण समाज की समृद्धि और वैयक्तिक आत्मसंतुष्टि के लिए किया गया है । यदि राम यह समर्पण न करते तो उनके मन में चल रहा आत्मसंघर्ष यथावत् रहता ।

### 3. आत्म-स्वीकृति

आत्म-स्वीकृति से मनुष्य को अपने अस्तित्व और स्थिति का सही ज्ञान होने के पश्चात् ही आगामी कार्य-क्रम निर्धारित करते हुए कार्य में प्रवृत्त होता है । आत्म-स्वीकृति कर लेने पर व्यक्ति को अपने संदर्भ में कोई भ्रम नहीं रहता । वस्तुतः आत्म-स्वीकृति से जीवन निर्भ्रम होता है । संशय की एक रात में राम ने आत्म-स्वीकृति की है । उन्हें अपनी स्थिति का सही ज्ञान है । उनको अपने अस्तित्व के संदर्भ में कोई भ्रम नहीं है । राम अपनी पत्नी सीता की सुरक्षा में असफल हुए व्यक्ति हैं । इस तथ्य का उन्हें ज्ञान है । राम अपनी तुलना में अशोक के उन वृक्षों को श्रेष्ठ स्वीकारते हैं जो लोगों को छांह देते हैं । राम की आत्म-स्वीकृति इन शब्दों में देखी जा सकती है :-

" भ्रूमुकुट जैसे अशोकों के प्रति

हम समर्पित हैं ।

दे न पाये छांह

हम जिस हंसिनी को

हमसे श्रेष्ठ तो ये गाछ हैं ।"<sup>23</sup>

## सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य

### 1. एकता की भावना

जन एकता से शक्ति का निर्माण होता है । अलगाव अथवा अनेकता शक्ति हीनता का कारण है । इसी लिए अंग्रेजों ने फूट डालो और शासन करो की नीति अपनाई । भारतीय समाज को अलग-अलग खानों में बांटकर वे सदियों तक भारत पर शासन करते रहे । लेकिन जब भारतीय समाज सचेत हुआ और उसने अंग्रेजों की नीति को जाना तब वह एकता के सूत्र में बंधा और अपनी शक्ति का प्रदर्शन अंग्रेजों के विरुद्ध किया, जिसका फल उसे स्वतंत्रता के रूप में मिला ।

संशय की एक रात में शोषक रावण के विरुद्ध होकर समस्त शोषित जनता ने एकता की भावना से राम की व्यक्तिगत समस्या (सीता हरण) को सबकी समस्या बना दिया । अपने सभी अन्तर्विरोधों और राग-द्वेषों को भुला कर सारी जनता एकता के सूत्र में बंध गयी । रावण पर विजय पाने से पहले सेतुबंध के निर्माण की उपलब्धि समाज की एकता की भावना से ही हो सकी । हनुमान ने कहा :-

" यह सेतुबंध का बनना

रहता मात्र कल्पना ।

रामेश्वर तट

एकत्र न होते ये नग्न देह के

कोटि-कोट

साधारण जन ।"<sup>24</sup>

संशय की एक रात में चित्रित सामाजिक एकता में लोगों की परदुःख कातरता भी सन्निहित है । सब लोगों ने राम के कष्ट को अपना कष्ट समझा है ।

### 2. इकाई भूत मनुष्य की सार्थकता को स्वीकारना

समानता - स्वतंत्रता के हामी लोकतंत्रात्मक समाज में प्रत्येक मनुष्य सार्थक स्वीकारा जाता है । ऐसे समाज में लघुता के आधार पर किसी को नगण्य नहीं ठहराया जा सकता । समकालीन भारतीय समाज

लोकतन्त्रात्मकता की ओर उन्मुख हो चुका था । इसलिए उसमें मनुष्य मात्र की सार्थकता स्वीकारने का मूल्य भी प्रतिष्ठित हो गया था । इस मूल्य को नरेश मेहता ने संशय की एक रात में अभिव्यक्ति प्रदान की है । मनुष्य मात्र की सार्थकता स्वीकारते हुए लक्ष्मण कहते हैं :-

" कितने ही लघु हों

इससे क्या ?

सार्थक हैं ।"<sup>25</sup>

### 3. पारिवारिक संबंधों का निर्वाह

समाज परिवारों से और परिवार व्यक्तियों से बनता है । जब व्यक्ति पारिवारिक संबंधों का निर्वाह नहीं करता तो समाज में विकृतियां स्वतः आ जाती हैं । अतः पारिवारिक संबंधों का निर्वाह करना एक महत्वपूर्ण जीवन-मूल्य हो जाता है । संशय की एक रात में इस मूल्य की अभिव्यक्ति मुख्यतः भ्रातृत्व और पत्नीत्व के निर्वाह के द्वारा हुई है । लक्ष्मण ने भ्रातृत्व का सफल निर्वाह किया तो सीता को पत्नीत्व के निर्वाहक के रूप में चित्रित किया गया है ।

लक्ष्मण राम के अनुज हैं । उन्होंने राम के अग्रजत्व को हमेशा ध्यान में रखा है । उनमें राम के प्रति सेवा भाव कूट-कूट कर भरा है । वे राम के पीछे छाया बनकर लगे रहे । लक्ष्मण कहते हैं :-

" अमृत पुत्र

छाया सा

अनुज यह सदा पीछे लगा रहा ।"<sup>26</sup>

पत्नी का पत्नीत्व इसी में है कि उसका पति ही उसकी प्रतीक्षा बना रहे । समीक्ष्य कृति में राम को सीता की प्रतीक्षा बताकर इस पारिवारिक मूल्य का उद्घाटन किया है । लक्ष्मण ने राम के पारिवारिक संबंधों का उल्लेख करते हुए कहा है कि :-

" क्षमा करें मेरे इस भाव को

बन्धु अग्रज हैं ।



सीता की प्रतीक्षा हैं ।"27

राम को सीता की प्रतीक्षा बताना सीता के पतिवृत्त को रेखांकित करना है ।

#### 4. पूजा के पश्चात् कार्यारम्भ करना

पूजा के पश्चात् किसी भी कार्य में प्रवृत्त होने की परम्परा भारतीय संस्कृति की एक पहचान है । ऐसा माना जाता है कि पूजा, यज्ञादि करने के बाद काम शुरू करने से परिणाम शुभ निकलते हैं । संशय की एक रात में भारतीय समाज की इस मान्यता की अभिव्यक्ति की गयी है । लंका पर आक्रमण करने से पहले पार्थिव पूजन करने की व्यवस्था की गयी है । तृतीय सर्ग के अन्त में लक्ष्मण ने यह घोषणा की कि:-

" पार्थिव पूजन परान्त

बन्धु ! कल अभीयान होगा ।"28

राम ने युद्ध वेश धारण कर लिया है । लक्ष्मण अन्य सामन्तों के साथ पार्थिव-पूजन में व्यस्त हैं । सेनाओं को युद्ध यात्रा पर चल देने के लिए बस पार्थिव-पूजन की ही प्रतीक्षा है । युद्ध के लिए उद्धत राम के शब्दों में :-

"अभी पार्थिव पूजन परान्त

सेनाएं, रथ, घोड़े, हाथी सब

युद्ध यात्रा पर चल देंगे ।"29

#### 5. शपथ द्वारा विश्वास पैदा करना

हमारे समाज में शपथ द्वारा विश्वास पैदा किया जाता है । राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों के अलावा महत्वपूर्ण पदाधिकारियों को शपथ लेकर अपने कर्तव्यादि के प्रति दूसरे लोगों में विश्वास पैदा करते हुए हम आये दिन देखते रहते हैं । संशय की एक रात में लक्ष्मण अपने पौरुष के प्रति राम को आश्वस्त करने के लिए कई शपथ लेते हैं । यथा:-

" शपथ है बन्धु !

मुझको मेरे ही बाण की

आज की भाद्रपदी सांझ की

सिन्धु के इस

एकान्तिक शिवघोष की

इन देव पुरुष तारों की

शपथ है

बन्धु ! शपथ है

मुझको

इस क्षण की भी ।

x x x

आज्ञा करें राम

देखें फिर पौरुष इस बन्धु का ।

दूसरी बार होगा

सागर का मन्थन अब ।"<sup>30</sup>

#### 6. साक्षी (साक्ष) देकर प्रामाणिकता सिद्ध करना

मानवीय जीवन में प्रामाणिकता की पुष्टि के लिए साक्षी का बहुत महत्व है । जिसके लिए साक्ष प्रस्तुत किये जा सकें वही प्रामाणिक होता है । इसी लिए अपनी बात को सही सिद्ध करने के लिए साक्षी प्रस्तुत किये जाते हैं । संशय की एक रात के नायक राम युद्ध करने की मनःस्थिति में आ जाने पर अपने विवेक से युद्ध के संदर्भ में प्रश्न न करने के लिए बार-बार मना करते हैं । प्रश्न और संशय का अब समय नहीं रहा । इस तथ्य को प्रामाणित करने के लिए राम सूर्योदय को साक्षी रूप में प्रस्तुत करते हैं । यथा :-

" ओ मेरे विवेक ?

मुझसे मत प्रश्न करो

संशय की बेला अब नहीं रही ।

अन्तरीप जल में

सूर्योदय साक्षी है

संशय की बेला अब नहीं रही ।"31

## नैतिक मूल्य

### 1. शिष्टाचार

जीवन में शिष्टाचार का महत्वपूर्ण स्थान है । शिष्टाचार से मानवीय जीवन में सरसता का संचार होता है और समाज संतुलित होकर विकासोन्मुख होता है । समीक्ष्य खण्ड काव्य की संवाद योजना में आद्यन्त शिष्टाचार बिखरा पड़ा है । प्रत्येक पात्र ने अपने वक्तव्य में शिष्टाचार का ध्यान रखा है । राम के प्रति लक्ष्मण के वक्तव्य आज्ञा अथवा क्षमायाचना के बाद ही आरम्भ होते हैं । जब राम युद्ध के प्रश्न को लेकर युद्ध परिषद् की बैठक में बोल रहे होते हैं तो लक्ष्मण क्षमायाचना करके अपनी बात कहते हैं :-

" प्रभु ! क्षमा करें मेरे इस भाव को

क्या इस प्रश्न के

हम ही अन्तिम निर्णायक हैं ?"32

आगे हनुमान भी क्षमा मांग कर अपना मन्तव्य बताते हैं :-

" क्षमा करें महाराज ।

हम केवल घटना हैं

इतिहास नहीं "33

दशरथ और जटायु की आत्माएं भी राम को समझाने के बाद जाने के लिए राम की आज्ञा मांगती हैं :-

" हमें जाने दो

पुत्र । हमें जाने दो ।

हम व्यतीत

हमें व्यतीत ही रहने दो

हमें अब जाने दो

पुत्र हमें जाने दो ।"34

## 2. पश्चाताप -

भूल अथवा ग़लती के लिए दण्ड नीति का विधान होता है । यह भी माना जाता है कि अपनी भूल के लिए मनुष्य को यदि पश्चाताप हो जाय तो वह सबसे बड़ा दण्ड होता है । पश्चाताप से मनुष्य की आत्मशुद्धि हो जाती है ।

संशय की एक रात में राम को जानते हुए भी स्वर्ण मृग हित जाने की भूल का पश्चाताप होता है -

" पश्चाताप -

ओ अशोकों की छांह वाली

जानकी !

जानते भी क्यों गये हम

स्वर्ण मृग हित! ?

यह परिताप

यह अनुताप-

अनुखन सालता है ।"35

## 3. जैसे को तैसा होने की भावना-

समाज में जैसे को तैसा होने की बात बराबर कही-सुनी जाती है । इसका तात्पर्य यह है कि अच्छे के प्रति अच्छा और बुरे के प्रति बुरा व्यवहार करना चाहिए । इस नीति के पालन से मनुष्य की अपराध भावना कम होती है । यदि समाज में मनुष्य की अपराध भावना मिटानी है तो जैसे को तैसे की नीति अपनानी पड़ेगी । भारत की स्वतंत्रता के दीवाने शहीदों ने अंग्रेज़ों की दमनात्मक नीति के विरुद्ध यही नीति अपनाई थी नरेश मेहता ने संशय की एक रात में इसी नीति की प्रतिष्ठा की है ।

छाया के द्वारा राम को रावण के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रेरित करना जैसे को तैसे की नीति का

ही क्रियान्वयन है । रावण के द्वार से राम के शान्ति दूत हार कर वापस आ गये और राम युद्ध नहीं चाह रहे थे । तब छाया राम को समझाते हुए युद्ध करने को कहती है -

" राम !

तुम चाहते हो सत्य

और अधिकार

युद्ध साधन के बिना

प्रतिबार

रावण-द्वार से

तुम्हारे पूत लौटे हार

फिर भी युद्ध

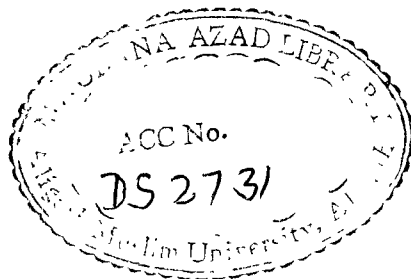
अस्वीकार

तुमको ।

x x x

तुम्हें लड़ना युद्ध है

असत्य से ।" 36



### वैज्ञानिक मूल्य

#### 1. तत्त्व की विद्यमानता की स्वीकृति-

विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि दुनिया में तत्त्व कभी नष्ट नहीं होता । विभिन्न परिस्थितियों में तत्त्व का रूप-परिवर्तन हो जाता है । साधारण मनुष्य तत्त्व के इस रूप-परिवर्तन को तत्त्व का नष्ट होना समझकर दुःखी होता है । वस्तुतः तत्त्व की विद्यमानता की स्वीकृति एक ऐसा वैज्ञानिक मूल्य है जिससे मनुष्य अकारण दुःखी होने से बचता है । संशय की एक रात में इस मूल्य की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है । युद्ध में होने वाले नर-संहार के बारे में सोचते हुए राम जब युद्ध करने और न करने की द्विधात्मक स्थिति में होते हैं तब

जटायु उनको इस मूल्य से अवगत कराते हुए कहता है -

" यहां कुछ नहीं समाप्त हुआ

क्योंकि कभी भी

कुछ नहीं आरम्भ हुआ ।

वह तो क्षण था

गुण था

जो कि है रहेगा भी

केवल हम ही

उस क्षण के बाद नहीं होते

इसी लिए हमें

कुछ जन्म लेता मरता लगता है ।

अजन्मे अविनश्वर क्षण या समय को नहीं ।"<sup>37</sup>

## 2. सन्तान में पूर्वजों के गुणों का संक्रमण-

विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि सन्तान में आनुवंशिकता की प्रक्रिया के तहत पूर्वजों के लक्षण अथवा गुण संक्रमित होते हैं । राम को रघु की प्रतिकृति बताकर नरेश जी ने इस वैज्ञानिक मूल्य को समीक्ष्य काव्य में अभिव्यक्त किया है । लक्ष्मण राम के संबंधों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि -

" बन्धु अग्रज हैं

परिजन और पुरजन प्रिय भाजन हैं ।

x x x x x x x

महारण रघु की ही प्रतिकृति हैं ।"<sup>38</sup>

## दार्शनिक मूल्य

### 1. कर्म -

कर्म महत्वपूर्ण जीवन मूल्य है । वास्तव में जीवन का संचालन इसी मूल्य द्वारा होता है । जहां कर्म नहीं होता वहां जीवन केहोने की संभावना तक नहीं होती । यही कारण है कि जीवन के लिए कर्म की अनिवार्यता किसी न किसी रूप में हर युग में बनी रही है ।<sup>39</sup> कभी कर्म निष्काम भावना से प्रेरित होकर किया गया है तो कभी सकाम भावना से प्रेरित होकर । गीता में निष्काम कर्म की प्रतिष्ठा की गयी है ।<sup>40</sup> लेकिन समकालीन समाज में उपयोगिता वादी दृष्टि विकसित होने से सकाम कर्म प्रधान हो गया ।

संशय की एक रात में श्री नरेश मेहता ने इसी सकाम भावना से प्रेरित कर्म की प्रतिष्ठा की है । छाया राम को उस कर्म को करने के लिए प्रेरित करती है जिसके करने से यश, लक्ष्मी, धनादि भौतिक साधनों की प्राप्ति होती है । यथा—

" कीर्ति, यश, नारी, धरा

जय लक्ष्मी

ये नहीं है कृपा

या अनुदान ।

मेरे पुत्र !

भिक्षा से नहीं

वर्चस्व से अर्जित हुए हैं आज तक ।

यहां सब कर्तव्य है

जयाजय

धर्माधर्म कुछ भी नहीं ।

x x x x

पुत्र मेरे !

संशय या शंका नहीं

कर्म ही उत्तर है ।

यश जिसकी छाया है

उस कर्म को वरो ।"41

## 2. मोहाभिमुखता-

भारतीय दर्शन में मोहाभिमुखता की बात की गयी है । मोह दुःख और मृत्यु का कारण होता है ।  
वस्तुतः मोह मानवीय जीवन की उन्नति में बाधक सिद्ध हुआ है । इसलिए इससे बचने की बात कही जाती है ।

संशय की एक रात में छाया मोह को मृत्यु का कारण और असत्य बताते हुए राम को मोहाभिमुख होने की सलाह देती है -

राम !

मेरा मोह

मेरी मृत्यु था ।

x x x

राम !

मोह असत्य है

किसी का भी हो ।"42

जटायु भी मोही बनकर पुनः न मरने की बात करता है -

" हम आत्माएं हैं

संबंधहीन, बोधहीन आत्माएं

जिन्हें मोही बन

पुनः मृत्यु नहीं मरनी है ।"43

## 3. शान्ति की स्थापना-

शान्ति की स्थापना एक ऐसा जीवनमूल्य है जो मनुष्य के जीवन को सार्थक बनाता है । अशान्ति की स्थिति में मानवीय जीवन भय और आशंका से आलोड़ित होता है । समकालीन समाज में अशान्ति की स्थिति



बनी हुई थी । लोग शान्ति की स्थापना के लिए तरह-तरह के प्रयास कर रहे थे । श्री नरेश मेहता ने समीक्ष्य काव्य में इसी स्थिति का शब्दांकन किया है । काव्य का नायक शान्ति की स्थापना के तहत ही युद्ध के लिए तैयार हुआ है । काफी आत्मसंघर्ष झेलने के बाद चतुर्थ सर्ग में राम कह उठते हैं -

" मुझमें

कल का युद्ध

आज ही संभावित हो चुका है ।

मुझमें -

जो शान्ति चाहता था,

तापस वेशी मुझमें

कल का युद्ध

आज ही संभावित हो चुका है ।"<sup>44</sup>

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि संशय की एक रात में श्री नरेश मेहता ने भारतीय समाज के समकालीन जीवन मूल्यों की सफल अभिव्यक्ति की है ।

xx xx xxx x x x xxx xx xx

सन्दर्भ :

1. जे0ए0 सिम्पसन एण्ड ई0एस0सी0 वैनर, द ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी, (वॉल्यूम - तृतीय), क्लेरैन्जन प्रेस ऑक्सफोर्ड, सेकन्ड एडिशन, सन् 1989, पृ0 813.
2. डॉ0 भरत कुमार सिंह, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन-मूल्य, शब्द शक्ति प्रकाशन कानपुर, संस्करण प्रथम, सन् 1993 ई0, पृ0 122.
3. डॉ0 अरूणा गुप्ता, छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन-मूल्य, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण द्वितीय, सन् 1989 ई0, पृ0 64.
4. डॉ0 भरत कुमार सिंह, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन-मूल्य, पृ0 140.
5. वही, पृ0 120-21.
6. नरेश मेहता, संशय की एक रात, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा0 लि0 बम्बई, संस्करण प्रथम, सन् 1962 ई0, पृ0 शीषेबन्ध.
7. वही.
8. डॉ0 हुकुम चन्द्र राजपाल, नयी कविता की नाट्य मुखी भूमिका, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण प्रथम, पृ0 91.
9. डॉ0 हरिचरण शर्मा, नयी कविता नये धरातल, पद्म प्रकाशन जयपुर, संस्करण प्रथम, सन् 1969, पृ0 265.
10. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ0 10.
11. वही, पृ0 10-11.
12. वही, पृ0 76.
13. वही, पृ0 63.
14. जीवन मेहता, राजनैतिक चिन्तन का इतिहास, साहित्य भवन आगरा, संस्करण सन् 1988 ई0, पृ0 78.
15. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ0 78.
16. वही, पृ0 23.

17. वही, पृ० 90.
18. वही, पृ० 99.
19. वही, पृ० 78-79.
20. वही, पृ० 79.
21. वही, पृ० 19-20.
22. वही, पृ० 97.
23. वही, पृ० 7.
24. वही, पृ० 79.
25. वही, पृ० 18.
26. वही, पृ० 16.
27. वही, पृ० 15.
28. वही, पृ० 92.
29. वही, पृ० 102.
30. वही, पृ० 22.
31. वही, पृ० 108.
32. वही, पृ० 80.
33. वही, पृ० 82.
34. वही, पृ० 70.
35. वही, पृ० 8-9.
36. वही, पृ० 56 एवं 58.
37. वही, पृ० 66.
38. वही, पृ० 15.
39. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस गोरखपुर, संस्करण एक सौ सेतालिस, सं० 2048,  
पृ० 59.
40. वही, पृ० 65.

41. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ० 56-57.
42. वही, पृ० 57-58.
43. वही, पृ० 69.
44. वही, पृ० 100-101.

## अध्याय – पंच

समकालीन काव्य में सन्दर्भित जीवन-मूल्य और  
'संशय की एक रात'

समकालीन काव्य यथार्थान्मुखी है। यह काव्य मानव-जीवन की वास्तविकताओं की सवाहिका बना। समकालीन रचनाकारों ने युगीन सत्य को अधिकाधिक सम्प्रेषणीय बनाने के लिए पौराणिक कथाओं, प्रतीकों और मिथकों का सफल प्रयोग किया है। वस्तुतः छठे दशक के हिन्दी-काव्य में तद्युगीन मानव-जीवन की अभिव्यक्ति समग्रता में हुई है।

जीवन की विविधता कविताओं की अपेक्षा प्रबन्ध-काव्य में अधिक साथेकता के साथ प्रस्तुत की जा सकती है। यही कारण है कि छठे दशक के भारतीय समाज की उथल-पुथल की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रबन्ध-काव्यों की रचना हुई। प्रस्तुत अध्याय में कुछ महत्वपूर्ण प्रबन्ध-काव्यों में सन्दर्भित जीवन-मूल्यों की तुलना **संशय की एक रात** में सन्दर्भित जीवन-मूल्यों से करते हुए **संशय की एक रात** का मूल्यांकन करने का प्रयास किया जा रहा है। तुलनात्मक अध्ययन के लिए **अंधायुग** (भारती), **द्रोपदी** (नरेन्द्र शर्मा), **पाषाणी** (जानकी वल्लभ शास्त्री), **एक कंठ विषपायी** (दुश्यन्त कुमार) और **उर्वशी** (रामधारी सिंह दिनकर) को चुना गया है।

**अंधायुग :**

धर्मवीर भारती ने **अंधायुग** (सन् 1959 ई०) में पौराणिक कथानक को माध्यम बनाकर समकालीन जीवन-सन्दर्भों की सफल अभिव्यक्ति की है। इस रचना में समस्याओं और विकृतियों से आबद्ध मानवीय जीवन में सत्य, मर्यादा, कर्तव्यपरायणता, निःशस्त्रीकरण आदि जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। भारती ने अपनी काव्योपलब्धि के सबध में स्वयं लिखा है - 'पर एक नशा होता है - अंधकार के गरजते महासागर की चुनौती को स्वीकार करने का, पर्वताकार

लहरों से खाली हाथ जूझने का, अनमापी गहराइयों में उतरते जाने का और फिर अपने को सारे खतरों में डालकर आस्था के, प्रकाश के, सत्य के, मर्यादा के कुछ कर्मों को बटोर कर, बचाकर धरातल तक ले आने का — उसी की उपलब्धि के लिए यह कृति लिखी गयी है ।”<sup>1</sup>

**अंधायुग** की कथावस्तु महाभारत के अन्तिम अर्थात् अठारहवें दिन की संध्या से लेकर कृष्ण की मृत्यु तक फैली है । इस नाट्य-काव्य का कथानक पांच अंकों में विभक्त है ।

प्रथम अंक में कौरवों की पराजय के बाद सुनसान हुई कौरव नगरी का वर्णन है । कौरवों के महलों में दो बूढ़े प्रहरी घूम रहे हैं और कौरव कुल के नाश का वर्णन कर रहे हैं । इसी बीच विदुर आते हैं जो कुरुक्षेत्र से संजय के द्वारा समाचार लाने के बारे में चिन्तित हैं । तत्पश्चात् विदुर धृतराष्ट्र और गांधारी से मिलने चले जाते हैं । सभी पात्र प्रतिदिन युद्ध सत्य का विवरण सुनाने वाले संजय की प्रतीक्षा करते हैं । वहां सहसा बूढ़े याचक का प्रवेश होता है । वह झूठे भविष्य का प्रतीक है । इस अंक के अन्त में दो प्रहरी दास-वृत्ति से ग्रस्त जीवन की चर्चा करते हैं ।

दूसरे अंक का आरम्भ संजय के प्रवेश से होता है । वह जंगल में भटक गया है । इसी समय उसका मिलन कृतवर्मा से हुआ । वह युद्ध के सम्पूर्ण सत्य को बताने के बारे में सोचता है । इसके बाद उसकी भेंट अश्वत्थामा को हुई रहे कृपाचार्य से होती है । दुर्योधन की हार के कारण अश्वत्थामा ने अपना धनुष तोड़कर वन गमन किया था । संजय उधर जा पहुंचता है । अश्वत्थामा पांडव समझकर उसे मार देना चाहता है । कृतवर्मा उसे ऐसा करने से रोकता है । कृपाचार्य अश्वत्थामा में व्याप्त प्रतिहिंसा की भावना को देखकर उसे विश्राम करने के लिए ले जाते हैं ।

तृतीय अंक में कौरव-पराजय और उनकी दुःखद स्थिति का वर्णन किया गया है । युयुत्स का आगमन होता है । वह कौरव होकर भी पांडवों के पक्ष में युद्ध लड़ा था । गांधारी आती है जो युयुत्स पर व्यंग्य करके चली जाती है । युयुत्स मौन रहता है । इसी बीच संजय आता है और सबको राजा दुर्योधन की पराजय का समाचार देता है । इससे समस्त कौरव नगरी में हा-हाकार मच जाता है ।

चौथे अंक में मुख्य रूप से गांधारी के शाप की चर्चा हुई है । यह अंक भयावह बन पड़ा है ।

अश्वत्थामा और अर्जुन ने ब्रह्मास्त्रों का प्रयोग किया । अश्वत्थामा की पराजय होती है । अपना ब्रह्मास्त्र उत्तरा के गर्भ पर गिराने के कारण कृष्ण उसे शाप देते हैं । गांधारी, धृतराष्ट्र, विदुर, युयुत्स एवं संजय अपने संबंधियों के तर्पण के लिए युद्ध-स्थल की ओर प्रस्थान करते हैं । गांधारी अश्वत्थामा की करुण दशा को देखकर कृष्ण को पशुओं की तरह व्याध के हाथों मारे जाने का शाप देती है ।

पांचवे अंक में राज्य के सिंहासन पर बैठे युधिष्ठिर स्वयं को पराजित अनुभव करते हैं । भीम की युक्तियों से परेशान होकर धृतराष्ट्र और गांधारी वन में चले जाते हैं । वन में आग लगने से वे दोनों मर जाते हैं । भीम द्वारा अपमानित होकर युयुत्स आत्महत्या कर लेते हैं । अपने राज्य में व्याप्त अराजकता को देखकर युधिष्ठिर चिन्ता के शिकार होते हैं ।

समापन में कृष्ण द्वारा बन्धु-बान्धवों को मार डालने की कथा और यादव बंश में कलह के बढ़ने का जिक्र है । अन्त में एक व्याध ने कृष्ण के पैर को हिरन का मुंह जानकर तीर चलाया, जिससे उनकी मृत्यु हो जाती है ।

धर्मवीर भारती ने **अंधायुग** में अपने युग के अनुभूत सत्य को मिथकों के माध्यम से सम्प्रेषणीय बनाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है । युद्धोत्तर काल में अवतरित **अंधायुग** समकालीन अंधत्व का ही प्रतीक है । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद हमारे जीवन में जो स्थितियाँ उत्पन्न हुईं उन्हीं का निरूपण **अंधायुग** में हुआ है । अरुणकुमार सिंह अरुण के मतानुसार **अंधायुग** में युद्धोत्तरकालीन जीवन और सांस्कृतिक मूल्यों की व्याख्या हुई है ।<sup>2</sup>

### **अंधायुग में संदर्भित जीवन-मूल्य**

**अंधायुग में संदर्भित जीवन-मूल्य इस प्रकार हैं:-**

#### सत्य की पक्षधरता

सत्य का पक्ष लेना कठिन साधना है । जहां असत्य की प्रधानता हो वहां तो इसके लिए काफी खतरे उठाने पड़ते हैं । **अंधायुग** में इस मूल्य की रक्षा संजय और युयुत्स ने की है । युयुत्स ने कौरव दल का सदस्य होते हुए भी सत्य की पक्षधरता का पाण्डवों का साथ दिया । सबके सब महारथी असत्य के विरुद्ध नहीं जा सके पर युयुत्स सत्य की ओर गया-



"सत्य पर रहा मैं दृढ़

द्रोण भीष्म

सबके सब महारथी

नहीं जा सके

दुर्योधन के विरुद्ध

फिर भी मैंने कहा

पक्ष में असत्य का नहीं लूंगा

मैं भी हूँ कौरव

पर सत्य बड़ा है कौरव वंश से ।"<sup>3</sup>

युयुत्स को ऐसा करने के कारण अपनी मां गांधारी से घृणा मिली ।

संजय कहता है कि सत्य चाहे कटुतम हो फिर भी केवल सत्य कहेगा -

"सत्य कितना कटु हो

कटु से यदि कटुतर हो

कटुतर से कटुतम हो

फिर भी कहूंगा मैं

केवल सत्य, केवल सत्य, केवल सत्य ।"<sup>4</sup>

### कर्मवादिता

भारती ने अंधायुग में कर्मवादिता को वाणी दी है । मानव-जीवन में कर्म की महत्ता का उल्लेख करते

हुए वृद्ध याचक कहता है-

"केवल कर्म सत्य है

मानव जो करता है, इसी समय

उसी में निहित है भविष्य

युग युग तक का ।"<sup>5</sup>

### मर्यादित आचरण

मर्यादित आचरण मनुष्य की सफलताओं का कारण होता है । मर्यादित आचरण मनुष्य का सुरक्षाकवच होता है । धराशायी दुर्योधन के कवच को देखकर जब गांधारी रो पड़ती है तो विदुर कहता है—

'माता धैर्य धारण करें ।

कवच यह मिथ्या था

केवल स्वयं किया हुआ

मर्यादित आचरण कवच है

जो व्यक्ति को बचाता है ।"<sup>6</sup>

### मानव निर्णय

भारती ने अंधायुग में ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न लगाकर मानव की प्रतिष्ठा की है और जीवन में मानव-निर्णय का महत्व अंकित किया है । उनके अनुसार भाग्य का निर्माता मानव-निर्णय ही है, कोई अलौकिक सत्ता नहीं—

"पता नहीं

प्रभु है या नहीं

× × × ×

नियति नहीं है पूर्व निर्धारित

उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता-मिटता है ।"<sup>7</sup>

### निःशस्त्रीकरण

वैज्ञानिक पद्धतियों से बनाए जा रहे तरह-तरह के आयुधों से मानव-जीवन ख़तरे में पड़ गया है । हथियारों के होने भर से उनके प्रयोग और नर-संहार की सम्भावनाएं बन जाती हैं । क्योंकि हथियार होंगे तो उनका प्रयोग होगा और उनके प्रयोग से रक्तपात अवश्यम्भावी है । अतः आयुधों का न होना ही मानव-हित के

लिए श्रेयस्कर है ।

भारती ने अंधायुग में व्यंग्यात्मक शैली में निःशस्त्रीकरण की बात की है -

"प्रहरी 1. युद्ध हो या शान्ति हो

प्रहरी 2. रक्तपात होता है

प्रहरी 1. अस्त्र रहेंगे तो

प्रहरी 2. उपयोग में आएंगे, ही

प्रहरी 1. अबतक वे अस्त्र

प्रहरी 2. दूसरों के लिए उठते थे

प्रहरी 1. अब तो अपने विरुद्ध काम आएंगे

प्रहरी 2. यह जो हमारे अस्त्र अबतक निरर्थक थे

प्रहरी 1. कम से कम उनका

प्रहरी 2. आज कुछ तो उपयोग हुआ ।"<sup>8</sup>

### युद्ध-विरोध

भारती ने अंधायुग में युद्ध का विरोध किया है । वे रचना के प्रारम्भ में ही यह प्रश्न करते हैं कि युद्ध में हो रहा रक्तपात कब समाप्त होगा -

"यह रक्तपात अब कब समाप्त होना है

यह अजब युद्ध है नहीं किसी की भी जय

दोनों पक्षों को खोना ही खोना है ।"<sup>9</sup>

जब अश्वत्थामा और अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र चलाए तब व्यास ने अश्वत्थामा को नराधम और पशु की संज्ञाएं दीं । उन्होंने ब्रह्मास्त्र के दुष्परिणाम का वर्णन करते हुए अर्जुन से और अश्वत्थामा से अपना ब्रह्मास्त्र वापस लेने और अश्वत्थामा से मानवता का ध्वंस न करने के लिए कहा -

"अर्जुन सुनो ।

मैं व्यास हूँ  
 तुम वापस ले लो, ब्रह्मास्त्र को  
 अश्वत्थामा अपनी कायरता से तू  
 मत ध्वस्त कर मनुजता को  
 वापस ले अपना ब्रह्मास्त्र और मणि देकर  
 वन में चला जा .....।"10

उक्त उद्धरण में भारती की मानवीय संवेदना की गहराई और मानवता के प्रति उनका अगाध प्रेम ज्ञापित हुआ है। युद्ध होगा तो रक्तपात होगा ही। यह रक्तपात भारती की दृष्टि में अमानवीय और पशुवत् है। इसीलिए वे युद्ध का विरोध करते हैं।

### अंधायुग और संशय की एक रात

अंधायुग की भ्रांति संशय की एक रात की मूल प्रेरणा और कथ्य का संबंध युद्ध से है। जहां एक में युद्ध का विरोध किया गया है वहीं दूसरी में युद्ध की अनिवार्यता सिद्ध की गयी है। अंधायुग में भारती जी ने युद्ध के फलस्वरूप होने वाले विनाश को ही ध्यान में रखा है। उसके कारणों की तरफ उनकी दृष्टि नहीं गयी। संशय की एक रात में ऐसी स्थिति नहीं है। उसमें युद्ध की अनिवार्यता यों ही नहीं सिद्ध की गयी है। उसके पीछे तर्कानुमोदित कारण-कार्य सम्बंध है। अपहृत मानव-स्वतंत्रता को वापस लाना, साम्राज्यवृत्ति और औपनिवेशिकता का अन्त करना, सत्य की स्थापना करना आदि ऐसे कारण हैं जिनके आधार पर नरेश मेहता ने युद्ध को आवश्यक माना है। यह युद्ध किसी व्यक्ति विशेष की अधिकार लिप्सा से नहीं, समस्त जनता की सहमति से होना है। वस्तुतः संशय की एक रात में युद्ध की अनिवार्यता युद्ध के सृजनात्मक पहलू पर आंकी गयी है। अतः भारती के युद्ध विरोध से नरेश मेहता का युद्ध समर्थन अधिक मानवीय और शान्ति का पक्षधर है। जवरी मल्ल पारख के मतानुसार— " कवि ने युद्ध मात्र का विरोध नहीं किया है, यद्यपि कवि की दृष्टि से युद्ध से होने वाला विनाश भी ओझल नहीं हुआ है क्योंकि इस विनाश का भय ही संशय का मूल कारण है। इस दृष्टि से राम की संशय भावना मानवीय है। इसके विपरीत अंधायुग का कवि युद्ध के वस्तुगत कारणों पर जानबूझ कर

पर्दा डाले रहता है तथा विनाश को ही युद्ध का कारण बनाकर पेश करता है । इसलिए उसका युद्ध विरोध वास्तविक शान्ति का पक्षधर नहीं बन पाता ।<sup>11</sup>

**अंधायुग** में कवि का अस्तित्वबोध व्यंजित हुआ है । " इसमें व्यक्ति अपने चिन्तन एवं निर्णय में पूर्णतः स्वतंत्र है ।<sup>12</sup> इसीलिए भारती ने मानव-निर्णय की महत्ता प्रतिपादित की है । याचक कहता है -

**"नियति नहीं पूर्व निर्धारित-**

**उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता-मिटता है ।"**<sup>13</sup>

इसके बिल्कुल विपरीत संशय की एक रात में नरेश मेहता ने सामूहिक निर्णय की महत्ता ज्ञापित की है । राम का संशय जो व्यक्तिगत अथवा एकान्तिक है उसे अन्ततः बहुमत के निर्णय के सामने झुकना पड़ता है । मन्त्रिपरिषद् की बैठक में हुए निर्णय को ही राम स्वीकार कर लेते हैं । अतः राम की नियति का निम्नता उनका अपना निर्णय नहीं बल्कि सामूहिक निर्णय है । राम कहते हैं-

**"अब मैं निर्णय हूँ**

**सबका**

**अपना नहीं ।"**<sup>14</sup>

विभीषण ने बहुमत को न्याय और सत्य बताते हुए हर व्यक्ति की ऐतिहासिक नियति माना है ।<sup>15</sup> अतः स्पष्ट है कि नरेश मेहता की दृष्टि समष्टिपरक है और भारती की दृष्टि व्यष्टिपरक ।

**अंधायुग** और संशय की एक रात में वैषम्य के साथ-साथ मूल्य-साम्य भी देखने को मिलता है । कर्मवादिता और सत्यवादिता दोनों कृतियों में समान रूप से अभिव्यक्त हुई है ।

**संशय की एक रात** में नरेश मेहता ने लक्ष्मण, विभीषण और छाया के माध्यम से और **अंधायुग** में भारती ने वृद्ध याचक के माध्यम से कर्म की प्रधानता प्रतिपादित की है । नरेश मेहता भी मानते हैं कि मनुष्य का अस्तित्व कर्म से ही बनता है ।<sup>16</sup> जयाजय का निर्धारण कर्तव्य से ही होता है ।<sup>17</sup> जीवन के नियमों के चक्र की गति कर्म है ।<sup>18</sup> कर्म सामूहिक अन्धता है जिससे मुक्ति मिलती है ।<sup>19</sup> इसीलिए काम करना चाहिए ।<sup>20</sup> **अंधायुग** में केवल कर्म को ही सत्य बताया गया है । मानव के द्वारा किये गये कर्म से ही उसका भविष्य निर्धारित

होता है ।<sup>21</sup> अतः मनुष्य को कर्मपरायण होना चाहिए ।

नरेश मेहता और धर्मवीर भारती दोनों ही मानवीय जीवन में सत्यवादिता का समर्थन करते हैं । संशय की एक रात में राम मानव का मानव से सत्य चाहते हैं<sup>22</sup> और छाया राम को असत्य से युद्ध लड़कर सत्य की स्थापना करने के लिए बार-बार प्रेरित करती है ।<sup>23</sup> अन्त में राम उसी युद्ध के लिए तैयार होते हैं । अंधायुग में संजय और युयुत्स ऐसे पात्र हैं जो सत्य कहने और करने के लिए कटिबद्ध हैं ।<sup>24</sup>

अतः उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अंधायुग और संशय की एक रात में अभिव्यक्त जीवन-मूल्यों में समानता और असमानता है । यह संयोग की बात है कि कुछ बिन्दुओं पर दोनों रचनाकार एकमत हैं और कुछ बिन्दुओं पर एकदम विपरीत ।

### द्रोपदी

नरेन्द्र शर्मा कृत द्रोपदी एक लघु खण्ड-काव्य है । इसका प्रकाशन सन् 1960 ई० में हुआ । द्रोपदी महाभारत की जीवन्त पात्री द्रोपदी के जीवन-वृत्त पर आधारित एक विचारपूर्ण और प्रतीकात्मक काव्य है । कवि ने इस काव्य में पौराणिक कथा-भूमि का सहारा लेकर आधुनिक विचारक्षितिजों की ओर संकेत किया है ।

द्रोपदी में पांच सर्ग हैं । पांचो सर्गों में विभक्त कथा-वस्तु महाभारत के अनेक कथा-प्रसंगों को समाहित किए हुए है ।

प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में पांडवों, कौरवों, द्रोपदी, कुन्ती, कर्ण आदि पात्रों की प्रतीकात्मकता का विवरण देते हुए जीवन के सत्यों का सजीव वर्णन किया गया है । तत्पश्चात् कर्ण और अर्जुन से सम्बद्ध कथा-संदर्भों का परिचय दिया गया है । कर्ण एक कुमारी (कुन्ती) का पुत्र होने के कारण अवैध और त्याज्य है । उसे स्वजनों से अपमान और गुरु से अभिशाप मिला । अन्याय और अधर्म के साथ होने के कारण द्रोपदी-स्वयंवर में कर्ण की हार हुई । अर्जुन ने मीन बेध कर द्रोपदी को जीत लिया ।

द्वितीय सर्ग में अर्जुन ने अपनी विजय-गाथा युधिष्ठिर को सुनाई । द्रोपदी की प्रेरणा से पांचो पांडव एकमेव हो गये । द्रोपदी पांडव-कुल के लिए सुखमयी एवं श्रीसम्पन्न और कौरवों के लिए विनाशकारी प्रचण्डज्वाला बनी। जब धृतराष्ट्र को द्रोपदी-स्वयंवर में अर्जुन की जय की सूचना मिली तो उनको क्लेश हुआ । उन्होंने यह अनुभव

किया कि अब पांडवों का उज्ज्वल भविष्य होगा और कौरवों का अन्धकारमय । उन्होंने दुर्योधन को बहुत समझाया लेकिन उसने, पांडवों से रार बढ़ाना न छोड़ा । द्रोपदी राजमहल में धृतराष्ट्र से आशीष लेने आई । द्रोपदी की रूप दीप्ति को देखकर दुर्योधन का मन वज्राहत हो गया । धृतराष्ट्र ने भाव प्रदर्शन मात्र के लिए शिष्टाचार वश द्रोपदी पर गजमुक्ता बरसाए । लेकिन उनके मन में दुराव था ।

तृतीय सर्ग में द्रोपदी गंधारी का आशीष लेने आयी । गंधारी ने, द्रोपदी को, बाहों में भरकर अपने आनन्द के आंसुओं से उसका अभिषेक किया । इस प्रेम-मिलन से शकुनि आशंकित हो गया । उसने जुए के सहारे पांडवों के नाश का संकल्प ले लिया । धृतराष्ट्र युधिष्ठिर पर प्रसन्न हुए और उन्होंने दुर्योधन से उनका स्वागत करने और उनको उनका उचित दाय देने के लिए आग्रह किया । दुर्योधन इसके लिए तैयार नहीं हुआ । विदुर ने भी बहुत समझाया । लेकिन उनका समझाना भी दुर्योधन के सामने निष्प्रभावी रहा । अन्ततः धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को आदेश दिया कि वे अपने पुरुषार्थ से खाण्डव प्रस्थ बसाएं । पांडवों ने, अपने पुरुषार्थ से खाण्डवप्रस्थ बसाया और वे घहं के राजा बने । शोभा और समृद्धि में वह नगर इन्द्रपुरी के समान हो गया । दुर्योधन उसे देख मर्महत हो गया । वह पांडवों के नाश के लिए अपने मामा शकुनि के पास गया । शकुनि ने उसे यह आश्वासन दिया कि हम पांडवों को धूर्त क्रीड़ा के माध्यम से अपना दास बना लेंगे ।

चौथे सर्ग में युधिष्ठिर और शकुनि के मध्य जुआ हुआ । युधिष्ठिर जुआ में अपनी पत्नी द्रोपदी सहित सब कुछ हार गये । कौरवों ने द्रोपदी को भरी सभा में निर्द्वज करना चाहा । कृष्ण ने उसकी लाज रखी । पांडवों को जंगलों में यातनाएं सहनी पड़ीं । कौरव राज-काज के मद में ऊँघते रहे । बाद में महाभारत हुआ । इसमें कौरवों का नाश हुआ और पांडव विजयी हुए ।

पांचवें सर्ग में युद्धोपरान्त की स्थिति का वर्णन किया गया है । युद्ध-क्षेत्र रक्त रंजित था । चारों ओर विध्वंश के चिह्न दीख पड़ते थे । दर्दनाक स्तब्धता में भी पांडवों के स्वागतार्थ हस्तिनापुर सजा हुआ था । गंधारी ने पहली बार अपनी आंखों से पट्टी अलग की थी । उसने अपने, मृत पुत्रों को देखा । कुन्ती ने कर्ण को जल देने के लिए युधिष्ठिर से कहा । युधिष्ठिर ने ऐसा ही किया । युधिष्ठिर अपने राजत्व को धिक्कारने लगे । पांडवों द्वारा किये गये छल-कपट उनको कचोटने लगे । इसी बीच अग्नि प्रकट हुई । अग्नि ने उनको

जीवन शक्ति का हरण ।

पूर्ण होगी यह इच्छा क्योंकर

निश्चय हारेगा कर्ण

धर्म के पथ से विचलित होकर ।<sup>26</sup>

### वैध की स्वीकृति

नरेन्द्र शर्मा ने द्रोपदी में इस तथ्य पर बल दिया है कि मानवीय जीवन में जो वैध है वही स्वीकार्य है और अवैध अस्वीकार्य । कर्ण अवैध होने के कारण ही कुन्ती ने त्यागा :-

" पृथ्वी का पुत्र अवैध,

कर्ण कानीन सूर्य का बेटा ।

स्वीकार विश्व को वैध

वैध जो नहीं भाग्य का हेटा ।

है जो अवैध वह त्याज्य

पृथा ने सूर्य पुत्र को त्यागा ।

कर दिया धार पर शायित

शयित का सोया भाग्य न जागा ।<sup>27</sup>

### वचनबद्धता

वचनबद्धता से मनुष्य का मनुष्य के प्रति विश्वास जागता है । जो मनुष्य वचनबद्ध होकर जीवन-व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं उनका जीवन स्थाई महत्व का हो जाता है । नरेन्द्र शर्मा ने जीवन में वचनबद्धता की महत्ता को रेखांकित किया है । कर्ण महाभारत में वचनबद्ध होकर अन्त तक लड़ा :-

वचनबद्ध वह लड़ा अन्त तक

केवल मिट जाने को ।<sup>28</sup>



### नारी महात्म्य

नरेन्द्र शर्मा ने द्रोपदी में नारी को भोग्या की परिधि से निकाल कर जीवनी शक्ति के रूप में चित्रित करके उसके महात्म्य को प्रतिष्ठित किया है। कवि ने इस काव्य में भूलकर भी नारी-अपमान न करने की सलाह दी है :-

"खेल पावक प्रवचन का भूलकर भी मत खेलना।"<sup>32</sup>

नारी शक्ति का वह रूप है जिसमें सारा ब्रह्माण्ड समाया है :-

"नारी कृत्या, मृत्यु, उर्वशी,  
जननी, जाया, माया,  
क्षीरसिन्धु धारिणी, तारिणी  
महाशून्य की काया,  
ऋतानृत, चिद्-अचिद् शक्ति वह  
नारी, लाल कमलिनी  
वह हिरण्य गर्भा है जिसमें  
सब ब्रह्माण्ड समाया।"<sup>33</sup>

### पुरुषार्थ प्रदर्शन

नरेन्द्र शर्मा मानते हैं कि अपनी स्वतंत्रता और अस्मिता की रक्षा के लिए मनुष्य को पुरुषार्थ करना चाहिए। इसीलिए वे द्रोपदी के प्रारम्भ में ही लिखते हैं कि:-

"पुरुषार्थ करो युव पुरुष।

कह रही याज्ञसेनि पांचाली।"<sup>34</sup>

जबतक पुरुषार्थी अपने पुरुषार्थ का प्रदर्शन नहीं करता तबतक उसका कोई महत्व नहीं है और न इस स्थिति में वह स्वयं अपनी और मनुष्यता की रक्षा कर सकता है। यही कारण है कि द्रोपदी में पुरुषार्थ प्रदर्शन पर बल दिया गया है। धृतराष्ट्र विदुर से कहते हैं :-

"क्या हुआ जो ऊजड़ पड़ा है वह देश  
 युधिष्ठिर निज बाहुबल से बनेंगे देवेश  
 नागजन के उपद्रव को करेंगे वह शान्त  
 न होगा आभीर जन से हस्तिनापुर क्लृप्त ।

x x x x x x x x

बसावें बंजर युधिष्ठिर दिखावें पुरुषार्थ  
 बनें अन्तर्वेदिका के द्वार-रक्षक पार्थ ।"<sup>35</sup>

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि सफल और सार्थक जीवन के लिए मनुष्य को पुरुषार्थी होना चाहिए।

### द्रोपदी और संशय की एक रात

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि द्रोपदी और संशय की एक रात का मूल प्रतिपाद्य समान है विध्वंशकारी पाशविक शक्तियों के शमनार्थ युद्ध की अनिवार्यता, नारी-महात्म्य की प्रतिष्ठा, अपनी स्वतंत्रता और अस्मिता की रक्षा जैसे जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति दोनों ही रचनाओं में हुई है।

द्रोपदी और संशय की एक रात दोनों कृतियों में पुरुषार्थ-प्रदर्शन का सृजनात्मक पक्ष ही अभिप्रेत है । द्रोपदी में कहा गया है कि युधिष्ठिर अपने पुरुषार्थ से बंजर भूमि बसावें और अन्तर्वेदिका की रक्षा करें ।<sup>36</sup> संशय की एक रात में लक्ष्मण अपने पुरुषार्थ से अपहृत मानव-स्वतंत्रता की प्रतीक सीता को वापस लाने की घोषणा करते हैं ।<sup>37</sup> संशय की एक रात में राक्षस के पापाचार<sup>38</sup> के अन्त के लिए युद्ध की अनिवार्यता ज्ञापित की गयी है तो द्रोपदी में यह कहा गया है कि युधिष्ठिर बाहुबल से देवेश बनकर हस्तिनापुर को आभीर जन से क्लृप्त नहीं होने देंगे और नाग जन के उपद्रव को शान्त करेंगे ।<sup>39</sup> यहां यह उल्लेख्य है कि आभीरजन और नागजन तथा रावण प्रवृत्तिगत एक ही हैं । जिनके अन्त के लिए युद्ध अथवा पुरुषार्थ प्रदर्शन अनिवार्य है ।

नारी को दोनों ही रचनाओं में समान महत्व प्रदान किया गया है । द्रोपदी में नारी मनुष्य की जीवन-शक्ति बताई गयी है और संशय की एक रात में नारी को मानव की स्वतंत्रता का प्रतीक माना गया है । जीवन की शक्ति और जीवन की स्वतंत्रता, दोनों ही मनुष्य के विकास और अस्तित्व के लिए आवश्यक शर्तें हैं । यदि ये दोनों

अथवा इनमें से कोई एक मनुष्य के पास नहीं है तो वह प्रंगु है और उसका जीवन निर्धन है । वस्तुतः नरेन्द्र शर्मा और नरेश मेहता का नारी के प्रति दृष्टिकोण उदात्त और समान है । नारी का अपमान दोनों ही कवियों को असह्य है । दुर्योधन ने द्रोपदी का और रावण ने सीता का अपमान किया तो दोनों का ही अन्त बुरा हुआ ।

यहां यह उल्लेख्य है कि नरेश मेहता और नरेन्द्र शर्मा दोनों ने ही अपनी-अपनी रचनाओं में स्वतंत्रता का प्रश्न उठाया है । लेकिन इन दोनों के स्वतंत्रता से सम्बद्ध विचारों में अन्तर प्रतीत होता है । नरेन्द्र शर्मा की स्वतंत्रता संकुचित लगती है और नरेश मेहता की स्वतंत्रता का फलक व्यापक दिखाई पड़ता है ।

नरेश मेहता मानव-मात्र की स्वतंत्रता की बात करते हैं और नरेन्द्र शर्मा समाज के एक वर्ग (क्षत्रिय) की स्वतंत्रता को ही अभिप्रेत मानते हैं । **संशय की एक रात** में साधारण जनता के प्रतिनिधि हनुमान सीता के अपहरण को साधारण जनता की स्वतंत्रता का अपहरण<sup>40</sup> मानते हुए अपने प्रदेश को किसी अन्य के आधीन नहीं देखना चाहते ।<sup>41</sup> अतः स्पष्ट है कि नरेश मेहता मानव-मात्र की पराधीनता के विरुद्ध हैं । जबकि **द्रोपदी** में नरेन्द्र शर्मा ने कहा है कि यदि क्षत्रिय पराधीन या परवश होता है तो यह उसके लिए अपराध है :-

**"क्षत्रिय के हित अपराध,**

**कि हो वह पराधीन या परवश ।"**<sup>42</sup>

इससे ऐसा लगता है कि नरेन्द्र शर्मा के लिए समाज के अन्य तीन वर्गों (ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र) की पराधीनता कोई अर्थ नहीं रखती । ऐसा नहीं है । यह रचना सन् 1960 ई० में लिखी गयी । उस समय भारतीय संविधान में समानता के अधिकार का वैधानीकरण हो चुका था । मनुवादी वर्णश्रित समाज का रूप बदल चुका था । अब तथाकथित क्षत्रिय के अतिरिक्त अन्य वर्णों (तथाकथित शूद्र, वैश्य और ब्राह्मण) का व्यक्ति सुरक्षाबलों में सेवा करके क्षत्रिय के लिए निर्धारित कार्य (रक्षा) करने की स्थिति में आ गया था । इसलिए **द्रोपदी** में नरेन्द्र जी ने जिस क्षत्रिय की बात कही है उसे मनुवादी क्षत्रिय न मानकर मानव-मात्र का ही प्रतीक मान लें तो नरेन्द्र शर्मा भी नरेश मेहता की भांति मानव-मात्र की स्वतंत्रता के पक्षधर हो सकते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि **द्रोपदी** और **संशय की एक रात** में सन्दर्भित जीवन-मूल्यों में समानता है, अन्तर उसके प्रस्तुतिकरण में है ।

## पाषाणी

जानकी वल्लभ शास्त्री कृत **पाषाणी** पांच गीति-नाट्यों का संग्रह है । इस संग्रह में संगृहीत गीति-नाट्यों के नाम इस प्रकार हैं :- गंगावतरण, उर्वशी, वासन्ती, पाषाणी और मंजरी । गीति-नाट्यों के इस संग्रह का रचना काल सन् 1953 ई० है । प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत गीति-नाट्यों का संक्षिप्त कथ्य-विश्लेषण इस प्रकार है -

### गंगावतरण

इस गीति-नाट्य में गंगा के पृथ्वी पर अवतरण की कथा प्रस्तुत की गयी है । भगीरथ एकाग्र होकर गंगा को धरती पर लाने के प्रयोजन से ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए तप करते हैं । ब्रह्मा भगीरथ के तप से प्रसन्न होकर उनसे वर मांगने के लिए कहते हैं । भगीरथ वर में धरती पर गंगा का अवतरण मांगते हैं । ब्रह्मा उन्हें यह वरदान दे देते हैं लेकिन साथ ही धरती पर गंगा के वेग को संभालने के लिए शिव को समर्थ बताते हुए भगीरथ को सलाह देते हैं कि वे उनका वर पाने के लिए भी तपस्या करें । इसी समय शंकर आ पधारते हैं और भगीरथ को अपना वर दे देते हैं ।

### उर्वशी

उर्वशी एक समस्या प्रधान गीति-नाट्य है । स्वयं रचयिता के शब्दों में - " उर्वशी की समस्या अलौकिक कला-प्रेम तथा लौकिक द्वन्द्वात्मक प्रेम को केन्द्रित करती है । इसमें भोगवादिनी कला को तर्जित किया गया है, जिससे कलाकार उर्वशी को अभिशप्त होकर सामान्य मानवी के रूप में दुःखान्त (नाटकीय) जीवन स्वीकार करना पड़ता है ।"<sup>43</sup>

उर्वशी का कथानक यह है कि एक असुर द्वारा उर्वशी का अपहरण हो जाने पर उसकी सखियाँ उसकी रक्षार्थ आर्यों को पुकारती हैं । नारियों का आर्तनाद सुनकर राजा पुरूखा वहाँ पहुँचता है। वह अप्सराओं को उर्वशी के उद्धार का वचन देकर असुर से लड़ने चला जाता है । असुर के साथ युद्ध में पुरूखा की जीत होती है । वह उर्वशी को मुक्त करके ले आता है । उर्वशी पुरूखा से प्रभावित होकर उससे प्यार कर बैठती है और उन्मन-उन्मन सी रहने लगती है । जब भरत मुनि को उसकी उन्मादोन्मत्त मनोदशा का पता चलता है तो वे उसे साधारण नारी के रूप में जीवन जीने का अभिशाप दे देते हैं ।

### वासन्ती

वासन्ती एक प्रतीकात्मक गीति-नाट्य है। इसमें कवि ने पतझड़, आशा, विश्वास और वासन्ती का मानवीकरण किया है। प्रथम दृश्य में पतझड़ और किसान के मध्य संवाद हुआ है। पतझड़ कृषक जीवन में आने वाली कठिनाइयों और आपदाओं का उल्लेख करते हुए किसान और मज़दूर को उसके जीवन की यथार्थ स्थिति का बोध कराता है। किसान पतझड़ की बातों पर ध्यान न देते हुए कर्मण्यता और साहस का परिचय देता है। द्वितीय दृश्य में कवि ने कहा है कि जहां आशा और विश्वास एकमेव हो जाते हैं वहां मंगल होता है। अतः कवि का अभिप्रेत यह है कि मनुष्य को आशा और विश्वास के साथ जीवन में प्रवृत्त होना चाहिए।

### पाषाणी

पाषाणी मूलतः एक मनोवैज्ञानिक गीति-नाट्य है।<sup>44</sup> इसमें पाषाणी (अहल्या) की तृप्त अतृप्ति और ऋषि (गौतम) की अतृप्त तृप्ति का अन्तर्द्वन्द्व अभिव्यंजित किया गया है।

पाषाणी का कथानक यह है कि ऋषि गौतम अहल्या (राजकुमारी) को उसके मां-बाप से मांगकर तपोवन आश्रम ले आये थे। ऋषि अहल्या को पुण्य से यज्ञ पत्नी अर्थात् अपनी पत्नी बनाना चाहते थे।

तपते-तपते अहल्या का मन ऊब जाता है। उसमें राजस-भाव का प्रादुर्भाव हो जाता है। इन्द्र के प्रति उसका प्यार जाग उठता है। वह सदा इन्द्र के सपने देखती है। एक दिन गौतम ने अहल्या के प्रति अपनी आसक्ति प्रकट की। इस अवसर पर अहल्या इन्द्र के प्रति अपने लगाव को प्रकट कर देती है। इससे गौतम को स्वयं से ग्लानि होती है और वे मूर्छित हो जाते हैं। मूर्छा की अवस्था में ही वे अहल्या को पाषाणी कह देते हैं।

### मन्जरी

मन्जरी बहु विवाह की प्रथा पर केन्द्रित है। इस गीति-नाट्य में, राजाश्रित योगी भैरवानन्द राजा चन्द्रपाल की भोग-लिप्सा की तृप्ति हेतु मित्र-राज्य कुन्तल की राजकुमारी को योग से बुलाकर बन्दी बना देता है। राजा चन्द्रपाल उससे दूसरा विवाह करना चाहता है। उसकी रानी भी इस विवाह के लिए सहमत है। वह राजकुमारी मन्जरी को राजा से विवाह कर लेने के लिए प्रेरित करती है। वह भारतीय राजाओं के बहु-विवाह-व्रती होने का उल्लेख भी करती है। मन्जरी इस विवाह का विरोध करती है। लेकिन, जब उसे

विवाह के कारण उसके पिता से युद्ध होने की झूठी खबर दी जाती है तो वह इस विवाह के लिए स्वीकृति दे देती है । यह स्वीकृति उसने युद्ध में होने वाले विध्वंश को बचाने के लिए दी थी । वह राजा को अपने पति के रूप में स्वीकार नहीं कर सकी । इसीलिए उसने विवाह के लिए स्वीकृति देने के पश्चात् आत्महत्या कर ली और भोगवादी राजा को तड़पता छोड़ दिया । अन्त में योगी भैरवानन्द भी अपने आपको कोसता हुआ मर जाता है ।

### पाषाणी में संदर्भित जीवन—मूल्य

पाषाणी में संदर्भित जीवन—मूल्य इस प्रकार हैं :—

#### सत्य

पाषाणी में कवि ने सत्य को प्रतिष्ठित किया है । भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा सत्य करने के लिए आते हैं :—

" उधर हिला कमलासन, ब्रह्मा रोक न अपने को सके,

आये करने सत्य, मनुज के रोक न सपने को सके ।<sup>45</sup>

भगीरथ का तप सत्य के लिए किया गया था । इसीलिए शिव ने भी प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया और उनके चतुर्दिक् विकास के लिए शुभ—कामनाएं कीं ।

#### संकल्प

संकल्प कठिन से कठिनतम् कार्य को भी सम्भव बना देता है । पाषाणी में भगीरथ अपने संकल्प से ही गंगा को धरती पर ला सके । कवि ने भगीरथ के संकल्प का परिचय सूत्रधार के माध्यम से दिया है । सूत्रधार कहता है :—

गये वर्ष पर वर्ष बीतते, सिर न भगीरथ का झुका

तन बन गया शिराओं का वन, मन का रथ न कभी रुका

झंझा को लाना ही होगा, लाना ही होगा उन्हें

स्वर्ग छोड़कर इस धरती पर, आना ही होगा उन्हें ।

इतना तप पर्याप्त नहीं, प्राणों की आहुति शेष है

तिल-तिल कर जल जाऊंगा में, आत्मा की द्युति शेष है ।

यही एक संकल्प, एक व्रत, एक टैक, एकाग्रता

किये भगीरथ ने प्रयत्न जो, वही प्रयत्न समग्रता ।<sup>46</sup>

### कर्म

पाषाणी में कवि ने कर्म को प्रधान मानते हुए भाग्य को कर्म पर निर्भर बताया है । पार्थिव लोक में कर्म की स्थिति का वर्णन करते हुए ब्रह्मा ने कहा कि :-

जानते हैं हम कि पार्थिवलोक में-

कर्म ही है धर्म, सुख में शोक में-

कर्म का ही लेख है जाता पढ़ा

कर्म पर निर्भर न भाग्य घटा-बढ़ा ।<sup>47</sup>

### लक्ष्योन्मुखता

प्रस्तुत समीक्ष्य कृति में कवि ने मानव जीवन के लिए लक्ष्य को आवश्यक माना है । कवि की स्पष्ट मान्यता है कि मनुष्य को किसी न किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य के तहत ही जीवन में प्रवृत्त होना चाहिए । सूत्रधार कहता है :-

हो निश्चित आदर्श और उद्यम अविरत, अश्रान्त हो,

तो विघ्नों के बीच, मीच के झुंड में भी क्यों भ्रान्त हो ?

लक्ष्यहीन जीवन से तो लक्ष्यार्थ मृत्यु है भली,

वन्ध्य वृक्ष से उपवन के, वन की सुन्दर किशुक कली ।<sup>48</sup>

### आशा और विश्वास

आशा और विश्वास जीवन के प्रति रुचि और लगाव पैदा करके मनुष्य को सफलता के चरम बिन्दु तक ले जाते हैं । आशा और विश्वास से जीवन में सुख की अनुभूति होती है । कवि ने पाषाणी में इसी तथ्य की अभिव्यक्ति की है । यथा :-

आशा :-

आशा और विश्वास जह्मं,

संगलमय मधुमास वह्मं ।

विश्वास :-

हम दोनों का विरह जभी

आता पतझर असह तभी ।<sup>49</sup>

वचन और कर्म में एकरूपता

कवि ने प्रस्तुत रचना में वचन और कर्म की एकरूपता प्रतिपादित की है । तपस्या में रत भगीरथ के लिए वचन और कर्म एकमेव हो जाते हैं । सूत्रधार कहता है कि :-

निराहार निर्मल बलशाली, पुण्य तीर्थ गोकर्ण में,

रहे तपस्या-निरत भगीरथ, एक वचन और कर्म में ।<sup>50</sup>

युद्ध की अनिवार्यता

प्रस्तुत रचना में नारी उद्धार हेतु युद्ध की अनिवार्यता ज्ञापित की गयी है । असुर द्वारा उर्वशी का अपहरण हो जाने पर राजा पुरूखा उर्वशी की सखियों से कहता है कि तुम चिन्ता मत करो, उर्वशी का उद्धार सुनिश्चित है । यदि असुर मानव से लड़ेगा तो उसकी हार ही होगी । पुरूखा उर्वशी की रक्षार्थ असुर से युद्ध करता है, जिसमें असुर मारा जाता है । पुरूखा उर्वशी को उसकी सखियों को सौंपते हुए कहता है:-

असुर को मार, तुम्हारा वचन, सुर का कार्य-

हो गये पूरे, विदा दो।<sup>51</sup>

अतः कवि ने मानवोचित स्थितियों में युद्ध को अनिवार्य ठहराया है ।

पाषाणी और संशय की एक रात

पाषाणी में संदर्भित उपर्युक्त जीवन-मूल्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनमें से कुछ जीवन-मूल्य संशय की एक रात में संदर्भित जीवन-मूल्यों से साम्य रखते हैं । अन्य रचनाओं की भ्रंति यह रचना



किसी भी बिन्दु पर संशय की एक रात से विपरीत नहीं जाती । समीक्ष्य दोनों रचनाओं में जो साम्य पाया जाता है, वह इस प्रकार है :-

**पाषाणी और संशय की एक रात** दोनों रचनाओं में सत्य, कर्म और युद्ध की अनिवार्यता को समान रूप से ज्ञापित किया गया है ।

**पाषाणी** में भाग्य का निर्माता कर्म को मानते हुए सुख और दुःख में मनुष्य का एक मात्र धर्म, कर्म ही बताया गया है तो **संशय की एक रात** में मनुष्य के अस्तित्व के लिए कर्म की अनिवार्यता ज्ञापित करके मनुष्य को कर्म में रत रहने की चेतावनी दी गयी है । उर्वशी के उद्धार अथवा मुक्ति के लिए पुरूखा ने जो मानवोचित कर्म<sup>52</sup> किया **संशय की एक रात** में उसी कर्म के लिए राम को छाया, लक्ष्मण, विभीषण आदि ने प्रेरित किया । जिसके लिए वे अन्ततः तैयार हो जाते हैं ।

पाषाणीकार ने ब्रह्मा के द्वारा तपस्यारत भगीरथ को वरदान दिलवाकर सत्य कराया है तो नरेश मेहता ने मानव का मानव से सत्य चाहने वाले राम को असत्य से युद्ध लड़ने के लिए उद्धत दिखाकर सत्य की प्रतिष्ठा की है ।

युद्ध की अनिवार्यता दोनों समीक्ष्य कृतियों में ज्ञापित हुई है । **पाषाणी** में भी युद्ध का कारण वही रहा है जो **संशय की एक रात** में है । यह कारण नारी-उद्धार है । अन्तर केवल इतना है कि **पाषाणी** में उर्वशी मात्र नारी है । और उसका अपहरण नारी का अपहरण है । **संशय की एक रात** में सीता मात्र नारी नहीं, साधारण जनता की स्वतंत्रता है और उसका अपहरण जनता की स्वतंत्रता का अपहरण है । वस्तुतः **संशय की एक रात** में नारी उद्धार की समस्या का विस्तार करके व्यापक बना दिया गया है । इससे नरेश मेहता की वैचारिक दृष्टि की व्यापकता का पता चलता है ।

### एक कंठ विषपायी

**एक कंठ विषपायी** दुष्यन्त कुमार द्वारा रचित एक नाट्य-काव्य है । इस कृति का प्रकाशन सन् 1963 ई० में हुआ । इसमें कवि ने पौराणिक शिवकथा को समकालीन संदर्भों में प्रासंगिक बनाकर प्रस्तुत किया है । इस कृति की कथा चार दृश्यों में विभक्त है ।

प्रथम दृश्य में वीरिणी के द्वारा बार-बार समझाये जाने के बावजूद दक्ष अपने यज्ञ में सती और शंकर का अपमान करता है । सती अपने पिता द्वारा अपने पति का अपमान सहन नहीं कर पाती है । वह अपने पति के अपमान से विक्षुब्ध होकर आत्मदाह कर लेती है । बेटी के आत्मदाह की सूचना जब वीरिणी को मिलती है तो वह मूर्छित होकर गिर पड़ती है ।

दूसरे दृश्य में विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और वरुण सती के भस्म होने और महादेव शिव के रौद्र रूप और गणों द्वारा दक्ष-यज्ञ को खण्डित करने की चर्चा करते हैं । चारों वीरभद्र के प्रहार, नन्दी का दुर्निवार अस्त्रों से संघातक लक्ष्य और अन्य शिव-अनुचर गणों और भृत्यों द्वारा किए गये भयानक रक्तपात का स्मरण कर दुःखी होते हैं । दक्ष का भृत्य सर्वहत्त ध्वस्त नगर की स्थिति का व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन करता है ।

तीसरे दृश्य में क्रंघे पर सती-शव लादे हुए शंकर सामने आते हैं । शंकर की इस अतिरिक्त मोहग्रस्तता पर वरुण और कुबेर को आश्चर्य होता है । शिव सती के साथ बिताए विगत जीवन की याद करते हैं । वे क्रोधित होकर यह निश्चय करते हैं कि यदि शाम तक सती को पुनः जीवन नहीं मिला तो फिर महाकाल का तांडव होगा । अन्त में शिव अपना डमरू बजाकर तांडव और युद्ध के निश्चय की सूचना देते हैं ।

चौथे दृश्य में ब्रह्मा और इन्द्र में युद्ध की अनिवार्यता और निस्सारता पर विवाद होता है । इन्द्र युद्ध के पक्ष की पुष्टि करते हैं और ब्रह्मा युद्ध को प्रतिहिंसावादी बताकर उसका विरोध करते हैं । इस विवाद के दौरान इन्द्रलोक में शिवसेना के द्वारा रक्तपात करने का समाचार आता है । जनता विवाद से ऊबकर निर्णय की मांग करती है । विष्णु सेनापति का दायित्व अपने हाथों में लेकर रण के मारू वाद्य बजाने की घोषणा करते हैं और शिव के चरणों में प्रणाम बाण छोड़ते हैं । विष्णु का यह बाण प्रणाम और युद्ध की चुनौती का वाहक था । शिव ने प्रणाम स्वीकार करके अपनी सेना लौटा ली ।

### एक कंठ विषपायी में संदर्भित जीवन—मूल्य

एक कंठ विषपायी में संदर्भित जीवन—मूल्य इस प्रकार हैं :-

#### सत्यान्वेषण

समीक्ष्य कृति में कवि ने मानवीय जीवन में सत्य के महत्व को स्पष्ट करते हुए सत्यान्वेषण पर बल

दिया है । छल-कपट और झूठे आदर्शों से आदृत सत्य तक पहुँच कर ही जीवन की सार्थकता को समझा जा सकता है और सच्चे सुख की अनुभूति की जा सकती है । शंकर छल और झूठे आदर्शों से ऊब कर जीवन के वास्तविक सत्य को पाने के लिए उद्यत हैं :-

मैं ऊब चुका हूँ  
 इस महिमा यंडित छल से  
 अब मुझे स्वयं का  
 वास्तव-सत्य पकड़ना है  
 जिन आदर्शों ने  
 मुझे छला है कई बार  
 मेरा सुख लूटा है  
 अब उनसे लड़ना है ।<sup>53</sup>

ब्रह्मा विजयी होने के लिए सत्यवादी होना अनिवार्य मानते हैं ।<sup>54</sup> वे सत्य के लिए प्राणों की आहुति पर बल देते हैं :-

यदि तुमको जय ही अभीष्ट है  
 अपनी ओर सत्य को खींचो  
 प्राणों की आहुति  
 युद्ध के नहीं  
 सत्य के लिए होती है ।<sup>55</sup>

विष्णु के लिए सत्य की श्रेष्ठता के समक्ष मित्रवत् संबंध बौने हो जाते हैं । वे अपने संबंधियों के प्रसन्न और अप्रसन्न होने की परवाह किये बिना सत्य का पक्ष लेने की घोषणा भीड़ के सामने करते हैं:-

चाहे शंकर मेरे कितने निकट मित्र हों  
 चाहे ब्रह्मा जी मेरे कितने अभिन्न हों

पर मैं अपना मत

सत्य के पक्ष में दूंगा ।<sup>56</sup>

### स्वतंत्रता

दुष्यन्त कुमार ने एक कूँठ विषपायी में जीवन के लिए स्वतंत्रता की उपादेयता को प्रभावशाली ढंग से ज्ञापित किया है । बंधन की बेड़ियाँ अशान्ति को जन्म देती हैं और अशान्ति में समस्त विकासात्मक कार्य रुक जाते हैं । राजकुमार सुलभ के द्वारा एक चिड़िया को खन्दी बना लेने पर चिड़िया की कातर ध्वनि से अशान्ति का वातावरण बन जाता है । सभी कामगारों ने काम बन्द कर चिड़िया की मुक्ति के लिए आवाज़ उठाई ।<sup>57</sup> वीरिणी के आदेशानुसार सुलभ और दक्ष के विरोध के बावजूद सर्वहत्त ने बल-प्रयोग से चिड़िया को मुक्त कर दिया :-

प्रभु !

मैंने आदेशबद्ध हो

बल प्रयोग से द्वार खोलकर

मुक्त कर दिया था पक्षी को ।<sup>58</sup>

दुष्यन्त कुमार ने चिड़िया की इस मुक्ति के माध्यम से मानव-मुक्ति को ही प्रतिपादित किया है ।

### कर्म :-

प्रस्तुत कृति में कर्म की प्रमुखता अभिव्यंजित हुई है । विष्णु पहले कर्म और बाद में किये गये कर्म की व्याख्या करने का तर्क देकर कर्म को महत्ता देते हैं :-

मेरे मत में

पहले कर्म हुआ करता है

फिर उसकी व्याख्या होती है ।<sup>59</sup>

### पारिवारिक संबंध (पतिव्रत और पत्नीव्रत) का निर्वाह

एक कूँठ विषपायी में पतिव्रत धर्म और पत्नीव्रत धर्म का मार्मिक चित्रण हुआ है । दाम्पत्य जीवन में पति और पत्नी के मध्य पारस्परिक आस्था एक प्रमुख घटक है । इसके अभाव में जीवन अभिशप्त हो जाता है ।

प्रस्तुत कृति में कवि ने शिव और सती के रूप में एक आदर्श दम्पति को प्रस्तुत किया है । सती और शिव दोनों ने अपने-अपने संबंधों की दृढ़ता का परिचय दिया है । पिता द्वारा हो रहे अपने पति के अपमान को सती सह नहीं पायी । पति के अपमान से विक्षुब्ध सती पति के प्रति अपनी आस्था का परिचय आत्मदाह से देती है, जिससे सब द्रवित हो जाते हैं । सती के इस त्याग और उसकी अवहेलना से विक्षुब्ध शिव भी बड़े से बड़ा ध्वंस करने को तैयार हो जाते हैं । इतना ही नहीं, सती के अभाव में शिव अपने जीवन को निरर्थक अनुभव करते हैं—

आह प्रिया ।

अब क्या रह गया शेष ?

सूना सा लगता है

सारा कैलाश—देश

नन्दा का मलिन वेश ।

हिम तक पर व्याप्त क्लेश ।

सारे संदर्भ व्यर्थ

जीवन का कुछ न अर्थ

अब ऐसा नहीं,

जो मेरे भाव ग्रहण करने में

हो समर्थ ।<sup>60</sup>

### युद्ध विरोध

प्रस्तुत रचना का कथ्य मूल रूप से युद्ध की समस्या पर ही केन्द्रित है । इस रचना में युद्ध पर विभिन्न दृष्टियों से विचार किया गया है । ब्रह्मा के विचारानुसार युद्ध अन्तिम सत्य नहीं है । इसलिए युद्ध नहीं होना चाहिए । इन्द्र मानते हैं कि जहाँ सत्य विफल हो, असुर प्रबल हों और धैर्य छूट जाता हो वहाँ युद्ध ही एक मात्र उपाय रह जाता है । विष्णु नागरिकों की मांग स्वीकार कर युद्ध का आह्वान करते हैं, लेकिन उनकी मनःस्थिति युद्ध करने की नहीं है । युद्ध का आह्वान करने के साथ-साथ उन्होंने शिव के चरणों में एक प्रणाम—बाण भी छोड़ा,

का अभिप्रेत युद्ध का विरोध प्रतिपादित करना रहा है और **संशय की एक रात** में युद्ध का समर्थन प्रतिपादित हुआ है। युद्ध-विरोध और युद्ध-समर्थन की दोनों स्थितियाँ विचारात्मक बहसों का परिणाम हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन विपरीत स्थितियों के लिए दोनों रचनाओं में प्रतिपक्ष को ही उत्तरदायी ठहराया गया है। **एक कंठ विषपायी** में विष्णु आदि देवताओं के प्रतिपक्षी शिव ने विष्णु के द्वारा भेजे गये प्रणाम बाण को स्वीकार कर अपनी सेनाएं लौटा लीं, जिससे युद्ध टल गया। इसके विपरीत **संशय की एक रात** में राम के प्रतिपक्षी रावण ने न्याय की हर बात अस्वीकार की और राम द्वारा भेजे गये दूत अपमानित किये, जिसके कारण युद्ध की स्थिति उत्पन्न हुई।

**एक कंठ विषपायी** में शिव के रूप में जिस पत्नी व्रत का निर्वाह हुआ है वह आन्तरिक और सच्चा है। जबकि **संशय की एक रात** में राम का पत्नी व्रत आरोपित अथवा ओढ़ा हुआ है। अपनी पत्नी के अपमान और आत्मदाह से शिव दुःखी ही नहीं होते बल्कि उसका बदला लेने के लिए बड़े से बड़ा ध्वंस करने को तैयार हो जाते हैं। राम अपनी पत्नी के अपहरण से दुःखी तो होते हैं, लेकिन उसकी रक्षार्थ युद्ध करने में तत्परता नहीं दिखाते। उन्हें अपनी पत्नी की चिन्ता नहीं, उस रक्तपात की चिन्ता है जो उसके अपहरणकर्ता से होने वाले युद्ध में होगा। तभी तो राम यह कह देते हैं कि— "मानव के रक्त पर पग धरती आती सीता भी नहीं चाहिए।"<sup>64</sup> यदि युद्ध परिषद् की बैठक में युद्ध के समर्थन में निर्णय न लिया जाता तो राम कदापि युद्ध के लिए तैयार न होते।

**एक कंठ विषपायी** और **संशय की एक रात** में पातिव्रत्य के निर्वाह के लिए क्रमशः सती और सीता की आयोजना की गयी है। यहाँ दोनों नारियाँ भारतीय नारी के पातिव्रत्य का प्रतिरूप हैं। सती की शंकर में और सीता की राम में पूर्ण आस्था है। सती अपने पिता के द्वारा आयोजित यज्ञ में अपने पति का स्थान सर्वोपरि आसन के निकट<sup>65</sup> देखना चाहती है। जब दक्ष ऐसा न करके शिव को अपमानित करते हैं तो सती इससे क्षुब्ध होकर आत्मदाह कर लेती है। सती का यह आत्मदाह उसके पातिव्रत्य की अन्तिम परिणति का द्योतक है। **संशय की एक रात** में कवि ने सीता का पातिव्रत्य लक्ष्मण के द्वारा व्यक्त करवाया है। अशोकों की छांह वाली असहाय सीता की चर्च करके लक्ष्मण राम के समक्ष सीता के पातिव्रत्य को ही रेखांकित करते हैं।

स्वतंत्रता का महत्व दोनों कृतियों में प्रतिपादित किया गया है । दोनों रचनाओं में स्वतंत्रतार्थ बल के प्रयोग का भी प्रावधान है । **संशय की एक रात** में लक्ष्मण साधारण जन की अपहृत स्वतंत्रता को पुरुषार्थ से वापस लाने की घोषणा करते हैं और **एक कंठ विषपायी** में सर्वहृत सुलभ द्वारा बन्दी बना ली गयी चिड़िया को बल-प्रयोग से बंधन मुक्त करता है ।

न्याय के संदर्भ में नरेश मेहता और दुष्यन्त कुमार की दृष्टि समान है । दोनों कवि न्याय के हामी हैं । **संशय की एक रात** में न्याय की हर बात अस्वीकार करने वाले रावण के प्रति सब में आक्रोश व्याप्त है और उसके अन्यायपूर्ण व्यवहार के कारण उसके विरुद्ध न्याय का युद्ध होना तय हुआ है । **एक कंठ विषपायी** में अनुचित आचरण के कारण शिव को दण्डित करने का प्रस्ताव इन्द्र द्वारा रखा जाता है और विष्णु साधारण जनता को न्याय देने का आश्वासन देते हैं ।

इसके अतिरिक्त समीक्ष्य दोनों कृतियों में कर्म को समान रूप से महत्व प्रदान किया गया है ।

### उर्वशी

श्री रामधारी सिंह दिनकर कृत **उर्वशी** बहुचर्चित नाट्य-काव्य है । यह रचना सन् 1961 ई० में प्रकाशित हुई । दिनकर जी ने इस रचना में उर्वशी और राजा पुरूखा के प्रेम-संबंध के माध्यम से काम की बहु आयामी व्याख्या प्रस्तुत की है । **उर्वशी** की कथावस्तु पाँच अंकों में विभक्त है । इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है :-

### प्रथम अंक

इस अंक का आरम्भ पुरूखा की राजधानी प्रतिष्ठान पुर के पुष्पकानन में नटी और सूत्रधार के द्वारा प्रकृति के सौन्दर्य वर्णन से होता है । नटी और सूत्रधार वसन्त के मनोहारी प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन कर रहे होते हैं, तभी अप्सराएं आकाश से पृथ्वी पर उतरती हैं । नटी और सूत्रधार अप्सराओं की वार्ता सुनने के लिए वृक्ष की ओट लेकर छिप जाते हैं । सहजन्या नामक अप्सरा अन्य अप्सराओं को यह बताती है कि एक दिन उर्वशी को एक दैत्य ने बलात् अपहृत कर लिया था । अपहृत उर्वशी को राजा पुरूखा ने मुक्त कराया था । उर्वशी राजा पुरूखा के बल-वैभव से प्रभावित हुई । फलस्वरूप उसके हृदय में पुरूखा के प्रति प्रेम जाग उठा ।

इस प्रेम के कारण उर्वशी स्वर्ग छोड़कर पृथ्वी पर आ जाने को विकल है । इसी बीच चित्रलेखा नामक अप्सरा वहां आ पहुंचती है । सखियों के पूछने पर वह बताती है कि वह उर्वशी को राजा पुरूखा के उपवन में पहुंचा कर आयी है । इसके बाद सभी अप्सराएं समवेत गान गाती हुई आकाश में उड़ जाती हैं ।

### द्वितीय अंक

इस अंक में राजा पुरूखा अपनी रानी औशीनरी को छोड़कर उर्वशी के साथ गन्धमादन पर्वत पर चला जाता है । औशीनरी अपने पति के इस पलायन से अत्यन्त दुःखी होती है । वह अपने जीवन को मरण झेलना बताती है । गन्धमादन पर्वत तक पुरूखा को जो सैनिक पहुंचाने गये थे वे वापस लौट कर आ जाते हैं । वे गन्धमादन पर राजा के प्रसन्न चित्त और ईश्वर की आराधना में रत होने का सन्देश औशीनरी तक पहुंचाते हैं । पुत्र की प्राप्ति हेतु उर्वशी के साथ पुरूखा के रमण को औशीनरी अनोखी आराधना बताते हुए अपने पति के लिए सर्वत्र कल्याण की कामना करती है ।

### तृतीय अंक

तृतीय अंक में पुरूखा और उर्वशी के प्रणय-क्रीड़ा का वर्णन किया गया है । मानव की विजय का तूर्य और अपने समय का सूर्य, पुरूखा अपनी प्रेयसि उर्वशी की बंकिम दृष्टि के सामने स्वयं को शक्तिहीन अनुभव करता है । वह उर्वशी के वक्ष पर सिर रखकर मर जाना श्रेयष्कर समझता है । उर्वशी ने भी स्वयं को पुरूखा के समक्ष पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया है । पुरूखा उसके लिए प्राणेश, ज्ञानगुरु, सखा, मित्र, सहचर सब कुछ है । इस अंक में कवि ने उर्वशी के सौन्दर्य का वर्णन भी विस्तार से किया है ।

### चतुर्थ अंक

इस अंक में महर्षि च्यवन के आश्रम में महर्षि की पत्नी सुकन्या उर्वशी के नवजात शिशु को गोद में लिए हुए सामने आती है । तत्पश्चात् चित्रलेखा और उर्वशी का आगमन होता है । सुकन्या चित्रलेखा को उस प्रसंग से अवगत कराती है जब उसने समाधिस्थ महर्षि च्यवन की तपस्या खंडित की और महर्षि ने इस तपोभंग को अपनी सिद्धि मानते हुए उसे अपनी पत्नी बनाया । उर्वशी भरत द्वारा दिये गये शाप को याद करके दुःखी होती है । उसे यह बात बार-बार सालती है कि अगले दिन पुरूखा का यज्ञ समाप्त होने वाला है और वह उसके



साथ-साथ रहेगी । लेकिन, भरत-शाप के कारण वह पुरूखा को अपने बेटे को नहीं दिखा सकेगी । उर्वशी अपने बेटे को सुकन्या के पास छोड़ने का प्रस्ताव रखती है । सुकन्या बच्चे को उर्वशी की गोद से लेकर उसे पालने का वचन देती है । तत्पश्चात् भरत-शाप का स्मरण करते हुए उर्वशी प्रस्थान कर जाती है ।

### पंचम अंक

यह अंक राजा पुरूखा द्वारा देखे गये स्वप्न के वर्णन से प्रारम्भ होता है । पुरूखा राज-प्रासाद में चिन्तामग्न बैठे हैं । जब महामात्य उनकी चिन्ता का कारण पूछता है तब राजा ने पिछली रात के सपने के बारे में बताया । सपने में पुरूखा ने मुनि च्यवन के आश्रम में धनुष की प्रत्यंचा मंजते हुए एक सुभव्य तेजस्वी बालक देखा । वह बालक पुरूखा का पुत्र आयु था । उसे उर्वशी ने सोलह वर्ष पूर्व च्यवनाश्रम की तपोभूमि में जन्म दिया था । उस समय पुरूखा पुत्रेष्टि-यज्ञ में यज्ञिय जीवन बिता रहे थे । उर्वशी ने बालक को जन्म देने के बाद सुकन्या को सौंप दिया था । उर्वशी ने ऐसा भरत के द्वारा दिये गये पति या पुत्र पाने के शाप के कारण किया था ।

सोलह वर्ष बाद ऋषि च्यवन के आदेशानुसार सुकन्या आयु को उर्वशी और पुरूखा के पास पहुँचा देती है । पुरूखा को जब पुत्रवान होने का पता चलता है तो उन्हें बहुत आश्चर्य होता है । वह आयु को अपने आलिंगन में ले लेते हैं । इसी समय भरत-शाप फलता है । उर्वशी भू-तल को छोड़कर सुरपुर चली जाती है । उर्वशी के प्रस्थान के पश्चात् सुकन्या पुरूखा को भरत-शाप से अवगत कराती है । पुरूखा देवताओं पर क्रोध करते हैं । वह देवताओं से युद्ध करके उर्वशी को पुनः प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करते हैं । लेकिन, नेपथ्य से एक आवाज़ आती है, जिसमें उन्हें युद्ध न करने की सीख दी जाती है । फस्वरूप पुरूखा युद्ध से विमुख होकर आयु का राजतिलक करते हैं । तत्पश्चात् वह वन को चले जाते हैं । आयु औशीनरी को सुखद भविष्य का आश्वासन देता है । यहीं रचना की इति हो जाती है ।

### उर्वशी में संदर्भित जीवन-मूल्य

उर्वशी में संदर्भित जीवन-मूल्यों को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है :-

### निष्काम काम

दिनकर जी ने उर्वशी में काम के विविध रूपों की चर्चा करते हुए निष्काम काम को प्रतिष्ठित किया है। जिस काम में मन और आत्मा सहज रूप से नहीं मिलती, जिसमें तन को विवश किया जाता है और जिसमें फलासक्ति सन्निहित रहती है, वह काम क्लृप्ता, दुष्ट और मलिन है।<sup>66</sup> ऐसे काम से समाज में पाप जन्म लेते हैं। जिससे मानव-जाति का अहित होता है। जबकि निष्काम काम समृद्धि का प्रतीक है। वह सुखदायक होता है। उर्वशीकार कहते हैं कि निष्काम काम से मिलने वाला सुख वह स्वर्गीय पुलक है जिसपर सपने में भी किसी का अधिकार नहीं हो सकता। यह सुख अनायास, सहज रूप से प्राप्त होता है। यथा :-

निष्काम काम—सुख वह स्वर्गीय पुलक है,

सपने में भी नहीं स्वल्प जिसपर अधिकार किसी का।

नहीं साध्य वह तन के आसफालन या संकोचन से,

वह तो आता अनायास, जैसे बूंदें स्वाती की,

आ गिरती हैं, अकस्मात्, सीपी के खुले हृदय में।<sup>67</sup>

वस्तुतः मनुष्य को यदि सच्चे काम-सुख का अनुभव करना है तो उसे निष्काम भावना से काम में प्रवृत्त होना चाहिए।

### कर्म

मानव-जीवन में कर्म की उपादेयता स्वयं सिद्ध है। मनुष्य स्वभाव से कर्मण्य है। मनुष्य यदि किन्हीं परिस्थितियों में कर्म के पथ से विचलित होता है तो उसका पतन अवश्यम्भवी है।

दिनकर जी की दृष्टि में मनुष्य स्वयं कर्म का ही रूप है। कर्म स्वयं आनन्द स्वरूपा है और समस्त कर्मों का फल कर्म ही है।<sup>68</sup> अतः दिनकर जी निष्काम कर्म की श्रेष्ठता में विश्वास रखते हैं। उनकी दृष्टि में फलासक्ति समस्त कर्मों को दूषित कर देती है।<sup>69</sup> इसलिए मनुष्य को फल की आशा किये बिना कर्म के पथ पर चलते रहना चाहिए। ऐसा करने में ही इकाईभूत मनुष्य की और समग्रता में समाज की भलाई है। निज कर्म से विमुख होने पर ही उर्वशी को भरत-शाप झेलना पड़ा, जिसके कारण उसे गृहस्थ नारी के सब

अपनी पीड़ा कछं, उसे अपना आनन्द कछं है,

जिसपर चढ़ा किरीट, भार पुर्वह समाज-शासन का ?<sup>71</sup>

### पातिव्रत्य

उर्वशी में कवि ने रानी औशीनरी के माध्यम से पातिव्रत्य धर्म की प्रतिष्ठा की है । राजा पुरूखा औशीनरी को बिना बताए उर्वशी के प्रेम-पाश में फंसकर प्रणय-क्रीड़ा के लिए गन्धमादन पर्वत पर चला जाता है। पति के वियोग में रानी अत्यन्त दुःखी होती है । वह अपनी सखी को बताती है कि अब उसके पास ऐसा कुछ नहीं बचा जो पति को न दिया हो । वह पति के चरणों पर तन, मन और जीवन न्योछावर कर चुकी है । इतने पर भी उसका पति उसे छोड़कर एक अप्सरा के साथ पलायन कर जाता है । सैनिकों द्वारा जब औशीनरी को पुरूखा के कुशल-क्षेम का समाचार मिलता है, तब वह अपने अद्वितीय पातिव्रत्य का परिचय देते हुए कहती है

मुझको मिलें जो शूल हों,

प्रियतम जहं भी हों, बिछे सर्व्व फूल हों ।<sup>72</sup>

अन्त में जब राजा वन को चला जाता है, तब भी रानी औशीनरी का पातिव्रत्य मुखरित होता है । वह ईश्वर से पुरूखा के कल्याणार्थ प्रार्थना करती है :-

अश्रुमुखी मांगती एक ही भीख त्रिलोक-भरण से,

कण भर भी मत अकल्याण हो प्रभो । कभी स्वामी का ।

जो भी हो आपदा, मुझे दो, मैं प्रसन्न सह लूंगी,

देव । किन्तु, मत चुभे तुच्छतम् कंटक भी प्रियतम को ।<sup>73</sup>

### एकत्ववाद

उर्वशी में दिनकर जी ने एकत्ववाद की प्रतिष्ठा की है । दृश्यमान जगत् और अदृश्य ईश्वर दोनों एक हैं, उनमें कोई भेद नहीं है । द्वैत का आभास मन के भ्रम के कारण होता है । यह भ्रम शुभाशुभ भावों से जन्म लेता है । शुभाशुभ की भावना से तटस्थ हो जाने पर ईश्वर और जगत् के मध्य दिखाई देने वाला भेद समाप्त हो जाता है । उर्वशीकार का एकत्ववाद निम्नांकित पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है :-

ईश्वरीय जग भिन्न नहीं है इस गोचर जगती से,

इसी अपावन में अदृश्य वह पावन सना हुआ है ।

x      x      x      x      x

मन की कृति यह द्वैत, प्रकृति में, सचमुच द्वैत नहीं है ।

जब तक प्रकृति विभक्त पड़ी है श्वेत-श्याम खण्डों में,

विश्व तभी माया का मिथ्या प्रवाह लगता है ।

किन्तु, शुभाशुभ भावों से मन के तटस्थ होते ही,

न तो दीखता भेद न कोई झंका ही रहती है ।<sup>74</sup>

#### युद्ध-विरोध

उर्वशी में कवि का युद्ध-विरोध ज्ञापित हुआ है । भरत-शाप के कारण उर्वशी राजा पुरूखा को छोड़कर स्वर्ग चली जाती है । जब पुरूखा को भरत-शाप का पता चलता है तो वह देवों पर क्रोध करते हैं । उर्वशी को पुनः प्राप्त करने के लिए वे देवताओं से युद्ध करने की घोषणा करते हैं । इस पर महामात्य पुरूखा को समझाता है । वह पुरूखा को बताता है कि नर को विजय नहीं, उज्ज्वल चरित्र शोभा देता है । पुरूखा पर महामात्य की इस सीख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वे महामात्य को कायर समझते हैं । इसी बीच नेपथ्य से पुरूखा के संचित प्रताप की आवाज़ आती है । उनका प्रताप कहता है कि देवों के साथ युद्ध करने में कल्याण नहीं है :-

पीना होना गरल, वेदना यह सहनी ही होगी ।

सावधान । देवों से लड़ने में कल्याण नहीं है ।<sup>75</sup>

अन्त में पुरूखा युद्ध की निस्सारता को स्वीकार करते हैं । वे युद्ध टाल देते हैं । मन में विरक्ति का भाव जाग उठता है । फलस्वरूप वे आयु का राजतिलक करते हैं और स्वयं सन्यास ग्रहण करके वन चले जाते हैं । यहीं इसका अन्त हो जाता है ।

#### उर्वशी और संशय की एक रात

संदर्भ :

1. धमेवीर भारती, अंधा युग, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण सन् 1978 ई०, पृ० 3
2. अरूण कुमार सिंह 'अरूण' अभिनव भारती (संयुक्तांक सन् 1989-90, 1990-91 ई०) हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़, पृ० 74.
3. धमेवरी भारती, अंधायुग, पृ० 55.
4. वही, पृ० 39.
5. वही, पृ० 42.
6. वही, पृ० 99.
7. वही, पृ० 26.
8. वही, पृ० 112.
9. वही, पृ० 13.
10. वही, पृ० 95-96.
11. जवरीमल्ल पारख, नयी कविता का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, के०एल० पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, संस्करण प्रथम, सन् 1991 ई०, पृ० 82.
12. डॉ० हुकुम चन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण प्रथम, पृ० 160.
13. धमेवीर भारती, अंधायुग, पृ० 26.
14. नरेश मेहता, संशय की एक रात, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा० लि०, बम्बई, संस्करण प्रथम, सन् 1962 ई०, पृ० 99.
15. वही, पृ० 90.
16. वही, पृ० 19.
17. वही, पृ० 56.
18. वही, पृ० 59.

19. वही, पृ0 92
20. वही, पृ0 107.
21. धर्मवीर भारती, अंधायुग, पृ0 42.
22. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ0 39.
23. वही, पृ0 58 एवं 70.
24. धर्मवीर भारती, अंधायुग, पृ0 39 एवं 55.
25. नरेन्द्र शर्मा, द्रोपदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण, सन् 1993 ई0, पृ0 53.
26. वही, पृ0 33.
27. वही, पृ0 32.
28. वही, पृ0 63.
29. वही, पृ0 42.
30. वही, पृ0 64.
31. वही, पृ0 46.
32. वही, पृ0 58.
33. वही, पृ0 71.
34. वही, पृ0 27.
35. वही, पृ0 47.
36. वही
37. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ0 23.
38. वही, पृ0 79.
39. नरेन्द्र शर्मा, द्रोपदी, पृ0 47.
40. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ0 78.
41. वही, पृ0 79.
42. नरेन्द्र शर्मा, द्रोपदी, पृ0 27.
43. आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री, पाषाणी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण द्वितीय, सन् 1967 ई0, पृ0 10.

44. वही, पृ० 11.
45. वही, पृ० 24.
46. वही, पृ० 23-24.
47. वही, पृ० 25.
48. वही, पृ० 18.
49. वही, पृ० 78.
50. वही, पृ० 19.
51. वही, पृ० 38.
52. वही
53. दुष्यन्त कुमार, एक कंठ विषपायी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण सन् 1963 ई०, पृ० 77.
54. वही, पृ० 98.
55. वही, पृ० 117.
56. वही.
57. वही, पृ० 16.
58. वही, पृ० 20.
59. वही, पृ० 118.
60. वही, पृ० 87.
61. वही, पृ० 125.
62. डॉ० हुकुम चन्द राजपाल, नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका, पृ० 67.
63. दुष्यन्त कुमार, एक कण्ठ विषपायी, पृ० 117.
64. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ० 40.
65. दुष्यन्त कुमार, एक कण्ठ विषमायी, पृ० 31.
66. रामधारी सिंह दिनकर, उर्वशी, चक्रवाल प्रकाशन पटना, संस्करण द्वितीय सन् 1964 ई०, पृ० 80-81.

67. वही, पृ० 82.
68. वही, पृ० 76.
69. वही, पृ० 81.
70. वही, पृ० 137.
71. वही, पृ० 148.
72. वही, पृ० 39.
73. वही, पृ० 150.
74. वही, पृ० 73 एवं 75.
75. वही, पृ० 141.
76. वही, पृ० 81.
77. नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृ० 67.



उपसंहार

जीवन-मूल्य जीवन व्यवहार के नियामक तत्व होते हैं। जीवन-मूल्यों से मानवीय जीवन का आधार निर्मित होता है। जीवन-मूल्य ही मानव समाज को अन्य जीवधारियों से विशिष्ट बनाते हुये मनुष्य को सामाजिक प्राणी का स्तर प्रदान करते हैं।

मानव समाज के विकास के साथ-साथ जीवन-मूल्यों के विकास और परिवर्तन का इतिहास जुड़ा रहता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि <sup>यह</sup> जीवन-मूल्यों का ही विकास है। सामाजिक विकास का परिचय देने वाली आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण आदि अवधारणायें जीवन-मूल्यों के बदलाव को ही अभिव्यंजित करती हैं। समाज के विद्यमान और अपेक्षित नवीन जीवन-मूल्यों की अभिव्यक्ति समकालीन साहित्य में होती है। जिससे साहित्य सार्थक होता है और साहित्यकार का दायित्व पूरा होता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय नागरिकों के जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। सदियों से शोषित भारतीय नागरिकों ने अपनी अस्मिता और अस्तित्व को समझा। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान के क्रियान्वयन से भारतीय समाज में नवीन आचरण संहिता का सूत्रपात हुआ। इसी समय हिन्दी में नयी कविता अस्तित्व में आई। हिन्दी के नये कवियों के सामने परतंत्र और स्वतंत्र दोनों प्रकार के जीवन के अनुभव थे। अपने इन अनुभवों के आधार पर नये कवियों ने विभिन्न पुराण कथाओं के माध्यम से अपेक्षित जीवन-मूल्यों का प्रतिपादन किया। यहां यह उल्लेख्य है कि नये कवियों की मूल्य-दृष्टि में पयोप्त भिन्नता हैं। कुछ प्रसंगों में तो इन कवियों के विचार एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत देखे जा सकते हैं। लेकिन, अपनी मूल्य दृष्टि के प्रस्तुतीकरण के लिये प्रत्येक कवि ने तर्कानुमोदित पद्धति का प्रयोग किया है। तर्क संगत होने के कारण प्रत्येक कवि का दृष्टि कोण सही जान पड़ता है। इस स्थिति में पाठक भ्रमित हो सकता है। उसके सामने यह प्रश्न हो सकता है कि वह किस जीवन-दृष्टि को ग्रहण करते हुए जीवन व्यवहार में प्रवृत्त हो? स्वतंत्रता के बाद के कवियों की मूल्य-दृष्टि में जो टकराव की स्थिति बनी थी, वह अकारण ही नहीं बनी थी। उसके लिये अन्तराष्ट्रीय स्तर पर समाजवादी और पूंजीवादी देशों के मध्य चल रहा शीत युद्ध और कॉंग्रेस फॉर कल्चरल फ्रीडम जैसे संगठन उत्तरदायी थे। पूंजीवादी देशों और संगठनों से सम्बद्ध रचनाधामियों की मूल्य-दृष्टि के केन्द्र में

व्यक्ति था और समाजवादी दंशा और समठना से सम्बद्ध रचनाधर्मियों ने अपनी मूल्य-दृष्टि के केन्द्र में समाज और सामूहिक हित को रखा। नरेश मेहता की मूल्य-दृष्टि मानवीय औदात्य और सवेकल्याण की भवना से ओत-प्रोत है।

नरेश मेहता कृत संशय की एक रात एक ऐसी कृति है जिसमें अभिव्यजित जीवन-दृष्टि का फलक नितान्त समाजोन्मुख है। अपनी मूल्य-दृष्टि की अभिव्यक्ति के लिये इस रचना में नरेश मेहता ने राम को माध्यम बनाया है। राम भारतीय समाज में एक आराध्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं। भारतीय जनमानस में राम की प्रतिष्ठा का कारण उनकी आदर्शवादिता है। वस्तुतः एक ख्याति प्राप्त आदर्श व्यक्तित्व का सहारा लेकर समकालीन समाज के लिये अपेक्षित जीवन-मूल्यों के प्रतिपादन में नरेश मेहता को पूर्ण सफलता मिली है। संशय की एक रात में नरेश मेहता ने एक ओर अपने युग के यथार्थ को वाणी दी है और दूसरी ओर ऐसे आदर्श विषय प्रस्तुत किये हैं, जिन्हें हमारा समाज, बढ़ती हुई भौतिकता वादी प्रवृत्ति के कारण प्रायः भूल चुका है। कहने का तात्पर्य यह है कि नरेश मेहता ने मानव जीवन को समग्रता में समझा है, तत्पश्चात् एक सुलझी हुई जीवन-दृष्टि का प्रतिपादन किया है।

समकालीन भारतीय समाज में राजनीतिक स्तर पर भारतीय संविधान के क्रियान्वयन, आर्थिक जगत् में औद्योगीकरण, विज्ञान के क्षेत्र में नवीन उपलब्धियों और पाश्चात्य ढंग की शिक्षा पद्धति के परिणाम स्वरूप अनेक नये जीवन-मूल्य अस्तित्व में आये। बहुमत का महत्त्व अथवा सामूहिक निर्णय की स्वीकृति, समानता, तत्त्व की विद्यमानता की स्वीकृति आदि ऐसे मूल्य हैं, जो समकालीन समाज में उभर कर सामने आये। संशय की एक रात में नरेश मेहता ने इन जीवन-मूल्यों को वाणी दी है। इसके साथ ही नरेश मेहता ने श्रीमद् भगवद्गीता से प्रेरणा लेकर कर्मवादिता जैसे मूल्य की प्रतिष्ठा भी इस रचना में की है। अतः मूल्य-स्थापन में नरेश मेहता ने अपने वर्तमान के साथ-साथ अतीत को भी देखा है।

संशय की एक रात के ओटे-से कलेवर में जीवन व्यवहार के विविध क्षेत्रों में सम्बद्ध विभिन्न जीवन-मूल्यों के सन्दर्भ उपलब्ध हैं। जीवन-मूल्यों की दृष्टि से इस लघु खण्ड काव्य

का फलक अत्यन्त व्यापक है। सन्दर्भित जीवन-मूल्यों के आधार पर समकालीन अन्य रचनाओं से की गयी इसकी तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि जितने जीवन-मूल्यों को इस रचना में स्थान मिला है उतने जीवन-मूल्य दूसरी रचनाओं में उपलब्ध नहीं होते हैं।

प्रस्तुत शोध में तुलना के लिए चुनी गयी पांचों कृतियों - अंधा युग, द्रोपदी, पाषाणी, एक कंठ विषपायी और उर्वशी - में युद्ध की समस्या को उठाया गया है। पाषाणी में नारी की मुक्ति के लिए लड़ाई के रूप में और द्रोपदी में देवेश बनने और आभीर जनों का उपद्रव शांत करने के लिए पुरुषार्थ प्रदर्शन के रूप में युद्ध की अनिवार्यता ज्ञापित हुई है। लेकिन, यहाँ युद्ध की सापेक्षता के पीछे जनाधार का नितान्त अभाव है। केवल व्यक्तिगत सोच के तहत ही ऐसा हुआ है। इसके विपरीत संशय की एक रात में युद्ध की सापेक्षता के पीछे बहुमत की शक्ति है। इस रचना में कवि ने युद्ध को एक जनतांत्रिक जीवन-मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करके अपनी जीवन-दृष्टि को विशिष्ट बना दिया है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि संशय की एक रात जीवन-मूल्यों की दृष्टि से एक उत्तम रचना है। इसमें सन्दर्भित जीवन-मूल्यों का फलक व्यापक है जो समकालीन काव्य में इसकी विशिष्टता का द्योतक है।

परिशिष्ट

मूल ग्रन्थ

(क) आधार ग्रन्थ :

1. नरेश मेहता · संशय की एक रात, हिन्दी ग्रन्थ रत्ना प्रा० लि० बम्बई, संस्करण प्रथम, सन् 1962.

(ख) अन्य ग्रन्थ :

1. जानकी बल्लभ शास्त्री · पाषाणी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण द्वितीय, सन् 1967 ई०.
2. दुष्यन्त कुमार · एक कठ विषपायी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण सन् 1963 ई०.
3. धर्मवीर भारती · अधायुग, किताब महल इलाहाबाद, संस्करण सन् 1978 ई०.
4. नरेन्द्र शर्मा · द्रोपदी, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, संस्करण सन् 1993 ई०.
5. रामधारी सिंह दिनकर · उवैशी, चक्रवाल प्रकाशन पटना, संस्करण द्वितीय, सन् 1964 ई.

समीक्षात्मक ग्रन्थ

1. डॉ० अरूणा गुप्ता · छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली, संस्करण द्वितीय, सन् 1989 ई०.
2. अवधेश चन्द्र गुप्त · स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : विचार तत्व, नीरज बुक सेन्टर दिल्ली, संस्करण (प्रथम) सन् 1984 ई०.
3. डॉ० उमाकान्त गुप्त · नयी कविता के प्रबन्ध काव्य : शिल्प और जीवन-दर्शन, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली, संस्करण प्रथम, सन् 1985 ई०.
4. उषा रानी · नयी कविता : पुनर्मूल्यांकन, ग्रन्थायन अलीगढ़, संस्करण प्रथम, सन् 1980 ई०.
5. डॉ० कमला प्रसाद पाण्डेय · छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रचना प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण प्रथम, सन् 1972 ई०.

6. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय : मूल्य-मीमांसा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, संस्करण प्रथम, सन् 1973 ई०.
7. डॉ० गोविन्द रजनीश : समसामयिक हिन्दी कविता : विविध परिदृश्य, देवनागर प्रकाशन जयपुर, संस्करण और समय नहीं दिया गया है।
8. घनश्याम दास रस्तोगी : आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, टाटा मैक्ग्रा-हिल पब्लिशिंग कम्पनी लि० नयी दिल्ली, संस्करण सन् 1980 ई०.
9. जय नारायण पाण्डेय : भारत का संविधान, सेन्ट्रल लॉ एजन्सी इलाहाबाद, संस्करण-23<sup>ण</sup> सन् 1993 ई०.
10. जवरी मल्ल पारख : नयी कविता का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, के०एल० पचौरी प्रकाशन गाजियाबाद, संस्करण प्रथम सन् 1991 ई०.
11. जीवन महता : राजनैतिक चिन्तन का इतिहास, साहित्य भवन आगरा, संस्करण सन् 1988 ई०.
12. डब्लू०एन० कुबेर : आधुनिक भारत के निमाता भीमराव अम्बेडकर, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार, संस्करण द्वितीय, सन् 1990 ई०.
13. डॉ० दशरथ ओझा : आज का हिन्दी नाटक : प्रगति और प्रभाव, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, संस्करण प्रथम, सन् 1984 ई०.
14. डॉ० देवराज : संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, प्रकाशन ब्यूरो सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, संस्करण प्रथम, सन् 1957 ई०.
15. प्रभाकर शर्मा : नरेश मेहता का काव्य : विमर्श और मूल्यांकन, पंचशील प्रकाशन जयपुर, सन् 1979 ई०.
16. डॉ० बनवारी लाल शर्मा : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्य, रामा पब्लिशिंग हाउस जयपुर, संस्करण प्रथम, सन् 1972 ई०.
17. बी० कुटपुस्वामी : समाज मनोविज्ञान : एक परिचय, हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी चण्डीगढ़, संस्करण प्रथम, सन् 1972 ई०.
18. डॉ० बैजनाथ सिंहल : नयी कविता : मूल्य-मीमांसा, मंथन पब्लिकेशन्स रोहतक संस्करण प्रथम, सन् 1985 ई०.
19. डॉ० भरत कुमार सिंह : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य में जीवन-मूल्य, शब्द शक्ति प्रकाशन कानपुर, संस्करण प्रथम, सन् 1993 ई०.
20. डॉ० महावीर सिंह (सं०) : नयी कविता की प्रबन्ध चेतना, गिरनार प्रकाशन मोहसाना गुजरात, संस्करण प्रथम, सन् 1981 ई०.
21. डॉ० मोहिनी शर्मा : हिन्दी उपन्यास और जीवन-मूल्य, साहित्यागार जयपुर, संस्करण सन् 1986 ई०.

22. डॉ० राजेन्द्र मोहन भटनागर · डॉ० अम्बेडकर · जीवन और दर्शन, किताब घर दरिया गज दिल्ली, संस्करण सन् 1990 ई०.
23. डॉ० राम रतन भटनागर · वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास, हिन्दी सप्ताह दिल्ली, संस्करण प्रथम, सन् 1962 ई०
24. डॉ० रामविलास शर्मा · आस्था और सौन्दर्य, किताब महल इलाहाबाद, प्रथम आवृत्ति, सन् 1983 ई०.
- स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस, संस्करण प्रथम सन् 1956 ई०
25. डॉ० विद्या सिंह · नरेश मेहता का साहित्य · एक अनुशीलन, ग्रन्थायन अलीगढ़, संस्करण प्रथम, सन् 1990 ई०.
26. विवेकी राय · स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य और ग्राम्य जीवन, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण प्रथम, सन् 1974 ई०.
27. डॉ० शशि सहगल · नयी कविता में मूल्य-बोध, अभिनव प्रकाशन दिल्ली, संस्करण प्रथम, सन् 1976 ई०
28. डॉ० सन्तोष कुमार तिवारी · नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, जवाहर पुस्तकालय मथुरा, संस्करण प्रथम, सन् 1980 ई०.
29. डॉ० सुन्दर लाल कथूरिया (स०) · कविता · समकालीन कविता, कुमार प्रकाशन नयी दिल्ली, संस्करण प्रथम सन् 1980 ई०.
30. हजारी प्रसाद द्विवेदी · अशोक के फूल, सस्ता साहित्य मंडल नयी दिल्ली, संस्करण-3, सन् 1952 ई०.
- हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, आठवी आवृत्ति, सन् 1969 ई०.
31. डॉ० हरिचरण शर्मा · नयी कविता · नये धरातल, पदम् प्रकाशन जयपुर, संस्करण प्रथम, सन् 1969 ई०.
32. डॉ० हुकुम चन्द राजपाल · आधुनिक काव्य में जीवन-मूल्य, भारतीय संस्कृत भवन, जालन्धर शहर, संस्करण प्रथम, सन् 1970 ई०.
- नयी कविता की नाट्यमुखी भूमिका, वाणी प्रकाशन दिल्ली, संस्करण प्रथम, समय नहीं दिया गया है।
33. हेमन्त कुमार पानेरी · स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास · मूल्य-संक्रमण, सघी प्रकाशन जयपुर, संस्करण प्रथम, सन् 1974 ई०



## पत्रिकाएँ

1. अभिनव भारती : संयुक्तांक 1989-90, 90-91, अ.मु.वि.वि., अलीगढ़।
2. आजकल : अंक - जून 1951, फरवरी 1952, जून 1954, सितम्बर 1954, मई 1955, अक्टूबर 1955, अगस्त 1957 ई०, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।
3. आलोचना : अंक - जनवरी 1954 ई०, इलाहाबाद।
4. बहुमत : अंक - 3 फरवरी से जुलाई 1993 ई०, भिलाई।
5. सरस्वती : अंक - अप्रैल 1954, प्रयोग।  
फरवरी 1964 ई०, इलाहाबाद।

## शब्द कोश

1. कॉन्साइज एन्साइक्लोपीडिया ऑफ साइक्लोजी : जोन विली न्यूयाक, सन् 1987 ई०।
2. द आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी : क्लेरन्डन प्रेस, आक्सफोर्ड।
3. मानक हिन्दी कोश : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।
4. हिन्दी विश्व कोश : नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, सन् 1960 ई०।
5. हिन्दी विश्व कोश : बी०आर० पब्लिशिंग कारपोरेशन दिल्ली, सन् 1986 ई०।
6. हिन्दी शब्द सागर : काशी नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी, सन् 1965 ई०।